http://www.jainkosh.org

सहजानंद शास्त्रमाला

मोक्ष – शास्त्र

भाग 16

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

मोक्ष-शास्त्र

आध्यात्म योगी पूज्य गुरुवर श्री मनोहर जी वर्णी
सहजानन्द जी महाराज

श्री सहजानन्द शास्त्र माला 13, से 18 भाग
१८५-ए, रणजीतपुरी, सदर - मेरठ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रकाशकीय

धर्मप्रेमी बन्धुओ !

श्रीमदुमास्वामी द्वारा प्रणीत 'मोक्ष शास्त्र' जैन धर्म व जिनशासन का प्राण है। प्रणेता ने छोटे छोटे सूत्रों में गागर में सागर भर दिया है। इस पर आठ दस शताब्दी पूर्व श्रीमद्भट्टाकलंकदेव, श्रीमद्विद्यानन्दि स्वामी जसे दिग्गजों ने टीकाएँ की हैं। परन्तु टीकाएँ संस्कृत में होने के कारण जनसामान्य के उपयोग में नहीं आतीं।

यह समाज के परमहित व उपकार की बात है कि पूज्य गुरुवर्य्य श्री सहजानन्द जी महाराज ने इस ग्रन्थ पर प्रवचन किये हैं। धर्म के मर्म को महाराज श्री ने किस प्रकार उजागर किया है, यह तो ग्रन्थ के अध्ययन से ही पता लगता है।

जिज्ञासु बन्धुओं से निवेदन है कि इस प्रवचन में संजोये रत्नों का लाभ उठायें जिससे मोक्ष मार्ग में प्रगति हो और सत्य सहज आनन्द प्राप्त हो।

मंगलाकांक्षी
मंत्री
सहजानन्द शास्त्रमाला
मेरठ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ॐ

मोक्ष शास्त्र प्रवचन

षष्टदश भाग

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्याय तीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी 'सहजानन्द' महाराज

अभी तक भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी इन तीन निकायों के सम्बन्ध में वर्णन हुआ। अब चतुर्थ निकाय के देवों का सामान्य नाम बताने के लिए सूत्र कहते हैं।

वैमानिकाः ॥१६॥

वैमानिक देवों के वर्णन में विमानों का कथन—अर्थात चतुर्थ निकाय के देव वैमानिक कहलाते हैं। वैमानिक शब्द का अर्थ है विमानों में बसने वाले। विमान कहते हैं वि, मान, वि मायने विशेष रूप से, मान मायने मानयन्ति याने अपने में स्थित रहने वाले जीवों को जो विशेष रूप से पुण्यवान मानें उन्हें विमान कहते हैं। अर्थात विशेष पुण्यवान जीव इन विमानों में आवास पाते हैं, ऐसा इसका अर्थ हुआ। इस सूत्र से केवल एक नामका ही बोध नहीं हुआ, वह तो हुआ ही, किंतु साथ ही यह भी जानकारी मिलती है कि अब इसके बाद जो वर्णन किया जायेगा वह वैमानिक देवों के विषय में होगा, अतएव यह सूत्र अधिकार रूप भी समझा गया। ये विमान तीन प्रकार के होते—इन्द्रक, श्रेणी बद्ध और पुष्प प्रकीर्णक। इन्द्रक विमान सबके बीच में अवस्थित है, मानों वह इन्द्र की तरह मध्य में अवस्थित है इस लिए उसका नाम इन्द्रक विमान रखा है। इस इन्द्रक विमान के चारों दिशाओं में आकाश प्रदेश की श्रेणी की तरह रहते हैं विमान। उन विमानों को श्रेणी विमान कहते हैं और विदिशाओं में फैले हुए पुष्पों की तरह अर्थात उनकी लाइन श्रेणी नहीं है। जहाँ चाहे अवस्थित है। ऐसा प्रकीर्ण पुष्प की तरह अवस्थित होने से उन विमान को पुष्प प्रकीर्णक कहते हैं। अब वैमानिक देवों का भेद बताने के लिये सूत्र कहते हैं।

कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१७॥

वैमानिकों के कल्पोपपन्न व कल्पातीत प्रकार—वैमानिक देव कल्पोपपन्न और कल्पातीत होते हैं वैमानिकों के ये दो प्रकार हैं। जो कल्पों में उत्पन्न हों सो कल्पोपपन्न और जो कल्पों से अतीत सो कल्पातीत। इन्द्र सामानिक आदि जो १० प्रकार बताये गये हैं उन कल्पनाओं से सहित जो आवास हैं वे कल्पोपपन्न हैं। यहाँ भवनवासी आदिक का ग्रहण नहीं है, क्योंकि इसमें कल्पातीत देव नहीं होते। जहाँ कल्पातीत है उसी निकाय में कल्पोपपन्न की रूढ़ि है। तो ये कल्पोपपन्न १६ स्वर्गों में होते हैं। और इससे ऊपर ग्रैवेयक आदिक में उनकी कल्पना नहीं है, अर्थात सभी अहिमिंद्र हैं। सामानिक आदिक भेद नहीं हैं इस कारण से उनको कल्पातीत कहते हैं। कल्पातीत के अर्थ में यह संशय न लेना कि ग्रैवेयक, अनुदिश

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अनुत्तर, ये कल्पना से माने गये फिर कल्प से अतीत कैसे ? इस कल्पना की बात यहाँ नहीं, या इन कल्पनाओं के कारण उन्हें कल्पोपपन्न न कहना, क्योंकि कल्पोपपन्न का मतलब इन्द्रादिक १० कल्पनाओं का है। नवग्रैवेयक आदिक में इन्द्रादिक की कल्पना नहीं है, क्योंकि वे सभी अहमिन्द्र हैं। एक समान ऋद्धि वाले हैं अतः कल्पातीत हैं। अब इन वैमानिक देवों का स्थान विशेष बताने के लिए सूत्र कहते हैं।

उपर्युपरि ॥१८॥

वैमानिक देवों के आवास स्थानों का संकेत—इन वैमानिक देवों का आवास ऊपर-ऊपर है याने ज्योतिषी देवों की तरह एक ही पटल में तिर्यक रूप से अवस्थित हो ऐसा नहीं है तथा व्यन्तर देवों की तरह इनकी विषम स्थिति हो। जहाँ चाहे आवास हो, ऐसा भी नहीं है। इसीलिये सूत्र में उपरि उपरि शब्द कहा है। यहाँ उपरि उपरि का अर्थ समीप वाचक लिया जाता है अर्थात बीच में और कुछ रचना की गई हो या अन्य देव आते हों फिर भी ऊपर और जहाँ चाहे वैमानिक हों, ऐसा अर्थ न लेना किंतु उन वैमानिकों में ऊपर-ऊपर वैमानिक ही हैं। अन्य कोई नहीं है। इस कारण सामीप्य-वाचक यहाँ दो बार कहा गया है। यहाँ यह भी शंका न रखना कि असंख्यात योजन का इन कल्पों में अन्तर रहता है इसलिये सामीप्य न कहना। यह शंका यों ठीक नहीं है कि भले ही अनेक योजन का अन्तर है एक कल्प से दूसरे कल्प में या स्वर्गों से ग्रैवेयक में। ग्रैवेयक से और ऊपर अनुदिश में, उससे ऊपर अनुत्तर में उन रचनाओं में अन्तर है एक दूसरे से, मगर हैं तो वैमानिक ही देव। वैमानिक वैमानिक ही रह रहे हैं अन्य कोई बीच में नहीं रहता। इस कारण तुल्य जाति की अपेक्षा अव्यवधान माना है।

सूत्र में ऊपर-ऊपर कल्पों की अवस्थिति का अर्थ—अब यहाँ इस प्रसंग में तीन बातें समझने की हैं। देव अथवा विमान अथवा कल्प। सूत्र में तो बताया है कि ये सब ऊपर-ऊपर हैं तो ऊपर-ऊपर क्या है ? क्या ऊपर-ऊपर देव हैं ? क्या ऊपर-ऊपर विमान हैं ? क्या ऊपर कल्प हैं ? इन तीन प्रश्नों के सम्बन्ध में क्रमशः विचार करें। यदि यहाँ यह अर्थ लिया जाय कि ऊपर-ऊपर देव हैं तो यह अर्थ इष्ट न रहेगा, क्योंकि देव ऊपर-ऊपर ही क्यों ? ऊपर भी है अगल-बगल भी हैं। देवों का ऊपर-ऊपर रहना इष्ट अर्थ नहीं बताता है। यदि विमान अर्थ लिया जाय कि ऊपर-ऊपर विमान हैं तो सब सब विमान ऊपर-ऊपर नहीं हैं। श्रेणी विमान तिरछे रूप से पाये जाते हैं और विदिशाओं में पुष्प प्रकीर्णक विमान पाये जाते हैं इसलिये ऊपर-ऊपर विमान हैं। यह भी अर्थ यहाँ नहीं ठीक रहता है। तो कल्प की बात विचारें कि ऊपर-ऊपर कल्प हैं तो यह अर्थ बैठता है अर्थात प्रथम कल्प के ऊपर द्वितीय कल्प है, उससे ऊपर तृतीय कल्प है। यों कल्पों का ऊपर-ऊपर अवस्थान संगत बैठता है। यहाँ एक शंका होती है कि ऊपर जो सूत्र कहा गया है, जिससे कि कल्प शब्द की अनुवृत्ति की जा रही है तो वहाँ शब्द आया है कल्पोपपन्न। वह समास वाला पद है तो समास वाले पद में से तोड़ करके कल्प शब्द कैसे ले लिया जा सकता है ? जिससे सूत्र का अर्थ बैठ सके कि ऊपर ऊपर-ऊपर कल्प हैं ? समाधान में कहते हैं कि समास भी हो तो भी अर्थ विधि से अपेक्षित होता है और उसका विशेषण से सम्बन्ध बन जाता है, क्योंकि उसमें प्रश्न और उत्तर तो अन्तर्गत हैं जैसे कहा यह राजपुरुष है तो वहाँ प्रश्न तो अन्तर्गत है। किसका पुरुष है ? उत्तर है कि राजा का पुरुष है। इसी तरह कल्पोपपन्न शब्द में प्रश्न है कि किसकी उपपत्ति है ? तो उसका उत्तर है कि कल्पों की उपपत्ति है। इसी कारण उसमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

से कल्प शब्द की अनुवृत्ति मिल गई है। इससे भी अर्थ यह निकला कि ऊपर-ऊपर कल्प होते हैं इसी प्रकार कल्पातीतों में भी विमान होते हैं तो यह जब प्रश्न होगा कि कल्पातीतों में क्या होता है ? तो वहाँ समझ लेना होगा कि विमान होते हैं। कल्पोपपन्न में तो कल्प होते हैं और कल्पातीतों में विमान होते हैं। अब यह बतलाते हैं कि कितने कल्प विमानों में वे देव होते हैं ? इसी के साथ कल्पातीतों का भी बताया जा रहा है।

सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥१६॥

१२ कल्प व १६ स्वर्गों का निर्देश—सौधर्म, ईशान, सनतकुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, इन स्वर्गों में, नवग्रैवकों में नौ अनुदिशों में विजय, वैजयन्त, अपराजित विमानों में और सर्वार्थ सिद्धि में वैमानिक देव हैं। सुधर्मा नाम का इन्द्र है वह जहाँ रहता है उसको सौधर्म कल्प कहते हैं। अथवा सौधर्म कल्प में आवास होने के कारण उस इन्द्र का नाम सौधर्म है। दूसरे इन्द्र का नाम ईशान इन्द्र है। ईशान का जहाँ निवास हो ऐसे कल्प को ऐशान कहते हैं। अथवा ऐशान स्वर्ग में जो रहे इस इन्द्र को ऐशान कहते हैं। तीसरे इन्द्र का नाम सनत्कुमार इन्द्र है, उसका जहाँ निवास है उस कल्प को सानतकुमार कहते हैं। अथवा सानत् कुमार स्वर्ग के सम्बन्ध से इन्द्र का भी नाम सानत कुमार है, चौथवें इन्द्र का नाम माहेन्द्र है। उसका जहाँ निवास है, उसको माहेन्द्र कल्प कहते हैं, अथवा माहेन्द्र स्वर्ग के सम्बन्ध से इन्द्र भी माहेन्द्र कहलाता है। ५वें इन्द्र का नाम ब्रह्म है उसका जहाँ निवास हैं उस लोक को ब्रह्मलोक कल्प कहते हैं। इसी प्रकार उसके उत्तर में ब्रह्मोत्तर कल्प है। छठे इन्द्र का नाम लांतव इन्द्र है। उसका जहाँ निवास है वह लांतव कल्प है अथवा लांतव कल्प के सम्बन्ध से इन्द्र का भी नाम लांतव है। इसके उत्तर की रचना को कापिष्ठ स्वर्ग कहते हैं। ७वें इन्द्र का नाम शुक्र है। उसका जहाँ निवास है उसे शुक्र कल्प कहते हैं अथवा शुक्र कल्प के सम्बन्ध से इन्द्र का भी नाम शुक्र है। इसके उत्तर में महाशुक्र नामक स्वर्ग है। ८वें कल्प का नाम शतार है। उसमें रहने वाले इन्द्र को शतार इन्द्र कहते हैं। शतार स्वर्ग से उत्तर की रचना का नाम सहस्रार है। उसमें रहने वाले इन्द्र को सहस्रार इन्द्र कहते हैं। ९वें कल्प का नाम आनत है। उसमें रहने वाले इन्द्र को आनत इन्द्र कहते हैं। १०वें कल्प का नाम प्राणत है। उसमें रहने वाले इन्द्र को प्राणत इन्द्र कहते हैं। ११वें कल्प का नाम आरण है। उसमें रहने वाले इन्द्र को आरण इन्द्र कहते हैं। १२वें कल्प का नाम अच्युत है, उसमें रहने वाले इन्द्र को अच्युत इन्द्र कहते हैं। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि स्वर्ग तो १६ (सोलह) हैं और कल्प बताये गये हैं, १२ (बारह) तो इसका अर्थ क्या है ? इसका अर्थ यह है कि पहले के चार स्वर्गों में तो एक-एक इन्द्र है और अन्त के १३वें, १४वें, १५वें, १६वें स्वर्ग में एक-एक इन्द्र है, इसलिये पहले के चार स्वर्गों के चार कल्प हैं, अन्त के चार स्वर्गों के चार कल्प हैं और बीच के ८ स्वर्गों के अर्थात् ५वें से लेकर १२वें स्वर्ग तक के ८ स्वर्गों में क्रमशः दो-दो स्वर्गों में एक-एक इन्द्र है याने ४ इन्द्र हैं। प्रतीक तो सबके हैं ही इस प्रकार १२ इन्द्र होने से १२ कल्प कहे गये हैं। तो इन स्वर्गों में १२ इन्द्र हैं और १२ ही प्रतीन्द्र हैं।

स्वर्गों से ऊपर ग्रैवेयकों की रचना व अनुदिश अनुत्तर की रचना—इन्द्रों की दृष्टि से तो इनका नाम है कल्प, किन्तु जोड़े-जोड़े से इनकी रचना है अर्थात् पहले दूसरे स्वर्ग की एक तल में

Report any errors at vikasnd@gmail.com

रचना है। तीसरे, चौथे स्वर्ग की एक तल में रचना है। इस तरह से ऊपर-ऊपर दो-दो स्वर्गों की एक तल में रचना होने से ये ८ विभाग हुये, जिनके सालह स्वर्ग कहलाते। सोलह स्वर्गों से ऊपर ग्रैवयक है, ग्रीवा कहते हैं गर्दन को। जैसे लोक का नक्शा बनाया तो दोनों पैर फैलाये हुये और कमर पर दोनों हाथ रखे हुये ऐसे ७ लड़के एक के पीछे एक खड़े किये जायें तो वह लोक की रचना की तरह हो जाती है। उस लोक रचना में जहाँ गर्दन का स्थान है वहाँ जो वैमानिक हैं उनको ग्रैवेयक कहते हैं। ग्रीवा का दूसरा नाम कंठ भी है। तो कंठ के सम्बन्ध में इसका नाम वैकण्ठ भी कह सकते, जिसको अब आजकल वैकुण्ठ कहने लगे। इन नवग्रैवेयकों में जो अहिमिन्द्र रहते हैं वे अनेक सम्यग्दृष्टि हैं, अनेक मिथ्यादृष्टि हैं, ग्रैवेयकों से ऊपर केवल सम्यग्दृष्टि ही रहते हैं और ग्रैवेयक तक स्वर्गों में और इन ग्रैवयकों में मिथ्यादृष्टि भी हैं, सम्यग्दृष्टि भी है। हाँ, इसका नियम है कि मुनिलिंग की तपस्या बिना ग्रैवयक में उत्पन्न नहीं हो सकते। भले ही वे मिथ्यादृष्टि हों लेकिन व्यवहार में सम्यग्दृष्टि और व्यवहार आचरण में मुनि धर्म पालन कर रहा हो वह ही जीव मरकर ग्रैवेयक में उत्पन्न होगा। ये ग्रैवेयक ९ जगहों में हैं, अर्थात् इनके पटल ९ हैं, एक के ऊपर दूसरा पटल, इस तरह ऊपर-ऊपर पटल हैं। उनमें रचना इसी तरह है जैसे सब पटलों की है। बीच में एक इन्द्रक विमान और दिशा और विदिशा में एक-एक विमान, इस तरह ९-९ विमानों के ९-९ पटल हैं इन नव-ग्रैवयकों से ऊपर अनुदिश विमान हैं। अनुदिश का एक ही पटल है, जिसमें बीच में एक इन्द्रक है और दिशाओं विदिशाओं में एक-एक विमान है। अनुदिश में सम्यग्दृष्टि जीव ही होते हैं इससे ऊपर अनुत्तर विमान हैं। अनुत्तर विमानों का एक ही पटल है, जिसमें कुल ५ विमान हैं, बीच में सर्वार्थ सिद्धि है पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में एक-एक विमान है जिसके नाम हैं—विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित।

सूत्रोक्त पदों के एकत्रित व विन्यस्त कहे जाने का रहस्य—यहाँ सूत्र की जो रचना है इस रचना में १२ स्वर्गों का तो एक पद दिया है और अन्त के चार स्वर्गों में १३वें, १४वें का एक पद, १५वें, १६वें का एक पद, इस प्रकार देने से यह स्पष्ट होता है कि १३वें, १४वें, और १५वें, १६वें स्वर्ग में श्रावक या मुनि उत्पन्न हो सकते हैं, अन्य कुधर्म की बड़ी तपस्या होने पर भी वे १२वें स्वर्ग से ऊपर उत्पन्न नहीं होते। यहां नवग्रैवयक उस शब्द को एक शब्द में न लिखकर जो नव को अलग लिखा है इससे यह सिद्ध हुआ कि ९ अनुदिश भी हैं। इस सूत्र सर्वार्थसिद्धि शब्द का अलग ग्रहण जो किया गया है याने अनुत्तर विमान ५ हैं, उन पांचो में चार के नाम अलग लिखे गये हैं और सर्वार्थ सिद्धि का नाम अलग लिखा है तो सर्वार्थ सिद्धि यह शब्द अलग लिखने से यह ध्वनित होता है कि सर्वार्थ सिद्धि में स्थित देवों का माहात्मय बड़ा है। सर्वार्थ सिद्धि के देव एक भवावतारी हैं, तो वहां से मरणकर मनुष्य ही होते हैं और उसी मनुष्यभव से मोक्ष चले जाते हैं, तो ऐसी कुछ विशेषतायें हैं जिससे सर्वार्थसिद्धि शब्द को अलग कहा गया है। शेष के चार विमानों में जघन्य स्थिति ३२ सागर है और उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर है, किन्तु सर्वार्थसिद्धि में जघन्य उत्कृष्ट भेद नहीं है सबकी आयु ३३ सागर ही है, वही जघन्य कहो, वही उत्कृष्ट कहो। जो प्रभाव सर्वार्थसिद्धि के एक देव का है वह इसके चार विमानों के देवों का भी नहीं है। ऐसी विशेषतायें बताने के लिये सर्वार्थसिद्धि शब्द को अलग ग्रहण किया गया है। सूत्र रचना में स्वर्गों के बाद अलग से ग्रैवयक शब्द देने से यह

http://sahjanandvarnishastra.org/

ध्वनित होता है कि कल्पोपपन्न सोलह स्वर्गों तक ही है। उसके बाद फिर कल्पातीत है। अनुदिश शब्द का अर्थ है कि प्रत्येक दिशा में एक-एक विमान होता। तो बस एक ही पटल है।

वैमानिक कल्प व कल्पातीतों की ऊपर-ऊपर रचना का संक्षिप्त दिग्दर्शन—इससे ऊपर के सूत्र में कहा गया था कि ये विमान ऊपर-ऊपर हैं। तो सोलह स्वर्गों तक तो दो-दो का सम्बन्ध लेना होगा अर्थात् दो-दो स्वर्ग ऊपर-ऊपर चलते गये हैं। जैसे प्रथम दो कल्प हैं जिनमें दो स्वर्ग हैं, उसके ऊपर दो कल्प हैं जो तीसरे और चौथे स्वर्ग कहलाते हैं। उनके ऊपर एक कल्प है जिसमें दो स्वर्ग हैं ५वां और छठवां। उसके ऊपर एक कल्प है, जिनमें दो स्वर्ग हैं - ७वां और ८वां उसके ऊपर एक कल्प है जिसमें दो स्वर्ग हैं—शुक्र और महाशुक्र। उसके ऊपर ८वाँ कल्प हैं जिसमें दो स्वर्ग हैं शतार और सहस्रार। इससे ऊपर दो कल्प हैं जिनमें दो स्वर्ग हैं—१३वां और १४वां। उसके ऊपर दो कल्प हैं जिनमें १५वां, १६वां स्वर्ग हैं पहले के चार स्वर्गों में और अन्त के चार स्वर्गों में एक-एक इन्द्र है और मध्य के दो-दो स्वर्गों में एक-एक इन्द्र है। जैसे बीच के ८ स्वर्गों में इस तरह रचना है कि ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्गों में एक ही ब्रह्म इन्द्र है, लांतव और कापिष्ठ स्वर्गों में एक ही लांतव इन्द्र है शुक्र और महाशुक्र स्वर्गों में एक ही शुक्र इन्द्र है, और शतार सहस्रार स्वर्गों में एक ही शतार इन्द्र है। शेष नीचे के चार और ऊपर के चार स्वर्गों में पृथक्-पृथक् एक-एक इन्द्र है।

प्रथम कल्प में ३१ पटलों में वैमानिकों के विमानों का निर्देश—इस भूमितल से जोकि यह रत्नप्रभा पृथ्वी का ऊपरी भाग है इस भूमि से ऊपर ६६०४० योजन ऊँचे पहले दूसरे स्वर्ग का कल्प है। इन दोनों कल्पों में ३१ पटल हैं। १-१ पटल में सब तरह के विमानों की रचना होती है। जिसके बीच में एक विमान चारों श्रेणियों में पंक्तिबद्ध विमान और विदिशाओं में फैले हुए विमान। ऐसी रचना के इस पटल से कुछ ऊपर चलकर कुछ आकाश छोड़कर दूसरे पटल की रचना है फिर तीसरे पटल की रचना है। ऊपर-ऊपर चल चलकर पटल हैं कुल ऐसे ३१ पटल हैं और उन ३१ पटलों में ही सौधर्म स्वर्ग भी है, ऐशान स्वर्ग भी है, दक्षिण में व पास के दोनों दिशाओं में याने पूर्व और पश्चिम दिशा में और इनके बीच जितने विमान आयें वे सब ३१ ही पटलों में पहला स्वर्ग कहलाता है और उत्तर दिशा में व उन पटलों की दोनों विदिशा में व बीच में सभी में फैले हुए विमान ऐसे ३१ पटलों में जितने हैं वे सब ऐशान स्वर्ग कहलाता है। इन पटलों के नाम इन्दुक विमानों के नाम पर रखे गये हैं, अर्थात बीच का जो विमान है उसका जो नाम है वही इन पटलों के नाम हैं। इन इन्दुक विमानों के नाम इस प्रकार हैं—ऋतु, चन्द्र, विमल, वल्गु, वीर, अरुण, नन्दन, नलिन, लोहित, कांचन, वञ्चन, मारुतज्ञ, द्वीश, वैडूर्य, रुचक, रुचिर, अंक, स्फटिक, तपनीय, मेघ, हारिद्र, पद्म, लोहिताक्ष, वज्र, नन्द्यावर्त, प्रभंकर, पिष्टाक, गज, मस्तक चित्त और प्रभा। इस जम्बूद्वीप में जो बीच में मेरु पर्वत है जिसका नाम रखा है मन्दर। उस मेरु की जो चूलिका के ऊपर याने मेरु की चोटी का जो अग्र भाग है उसके ऊपर ऋतु विमान है। जो पहले स्वर्ग के पटल के बीच में है, उस ऋतु विमान का और मेरु की चोटी के ऊपरी भाग का अन्तर केवल एक बाल बराबर मोटाई है। इस ऋतु विमान से चारों ओर दिशाओं में ४ विमानों की श्रेणियां निकली हैं। प्रत्येक श्रेणा में ६२-६२ विमान हैं। इस प्रकार पहले पटल में श्रेणी विमान २४८ श्रेणी विमान हैं। इस पहले पटल में विदिशाओं में फैले हुए अर्थात क्रम से नहीं किंतु कहीं भी अवस्थित प्रकीर्णक विमान हैं। इतने विमान एक पटल में हैं। इसके ऊपर दूसरा पटल है वहाँ बीच में चन्द्र विमान है और उसके चारों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ओर श्रेणियों में पहले पटल से १-१ कम है अर्थात ६१-६१ विमान हैं। फैले हुए भी विमान हैं। इस तरह ऊपर के पटलों में जैसे-जैसे ऊपर चढ़ें तो १-१ विमान श्रेणियों में कम होते गये, और अन्त का जो पटल है, प्रभा नाम का, उसकी प्रत्येक दिशाओं में ३२-३२ विमान हैं।

सौधर्म इन्द्र के आवास और परिवार का विवरण—अब यहाँ यह जानना चाहिए कि सौधर्म नामक इन्द्र का निवास कहाँ रहता है। तो ऊपर का जो पटल है प्रभा नाम का उसकी दक्षिण श्रेणी में ३२ विमान हैं। उनमें जो १८वें नम्बर का श्रेणी का विमान है वह है इन्द्र का आवास वाला विमान। इसी को ही सौधर्म कल्प का विमान कहा जाता है। यहाँ ही बहुत खास-खास इन्द्र से सम्बन्धित रचनायें हैं। सौधर्म इन्द्र के कल्प विमान में तीन प्रकार के और विमान हैं जिनमें तीन प्रकार पाये जाते हैं —नाम उनके ये हैं—(१) स्वस्तिक (२) वर्द्धमान और (३) विश्रुत। विश्रुत नामक बाह्य प्रकारों में रहने वाले तो अनिक और पारिषद देव हैं, मध्य प्रकार में वर्द्धमान त्रायस्त्रिंस देव हैं और इनका जो भीतरी प्रकार है स्वस्तिक, उसमें सौधर्म नामक इन्द्र रहता है, उसका यहाँ स्थान है। उस विमान के चारों दिशाओं में ४ नगर हैं, जिनके नाम हैं—कांचन, अशोकमन्दिर, मस्तारऔर गल्प। इस विमान के इन नगरों में ३२ लाख विमान हैं। ३३ त्रायस्त्रिंस हैं, ८४ लाख आत्मरक्ष हैं, ३ परिषद हैं, ७ सेनाएं हैं, ८४ हजार सामानिक हैं, ४ लोकपाल हैं। इस सौधर्म के इन्द्र के ८ अग्रदेवियाँ हैं —जिनके नाम हैं—पद्मा, शिवा, सुजाता, सुलसा, अन्जुका, कालिन्दी, श्यामा और भानु। अग्रदेवियों के अलावा ४० हजार प्रियदेवियाँ हैं। ये सभी देवियाँ और अग्र देवियाँ ५ पल्य की आयु वाली हैं, और ये सब १६ हजार देवियों के परिवार सहित हैं। १-१ अग्र देवी और वल्लभिका ये सब १६-१६ हजार देवी रूपों का विकार करने में समर्थ हैं। इन्द्र की जो ३ सभायें हैं जैसे कि यहाँ भी किसी संस्था में ३ सभायें होती हैं—(१) जनरल सभा, (२) प्रबन्ध सभा और (३) कार्यकारिणी सभा। इनमें उत्तरोत्तर संख्यायें कम होना स्वाभाविक है। ऐसे ही इन्द्रों की तीन सभायें हैं—(१) अन्तरंग (२) मध्यम (३) बाह्य सभा। अन्तरंग सभा का नाम है समिता। वहाँ ५ पल्य की आयु वाले १२ हजार देव उस सभा के पारिषदक (सदस्य) हैं। इन्द्र की जो मध्यम सभा है उसका नाम है चन्द्रसभा। उसमें ४ पल्य की आयु वाले १४ हजार देव सदस्य हैं। सौधर्म इन्द्र की जो बाह्य सभा है उसका नाम है जातु। इसमें तीन-तीन पल्य की आयु वाले १६ हजार देव सदस्य हैं। भीतरी सभा में रहने वाले प्रत्येक देवों की देवियाँ ७००-७०० हैं, उनकी आयु ढाई पल्य प्रमाण है। इन्द्र की मध्यम सभा में जो देव हैं उन प्रत्येक देवों की देवियाँ छह-छह सौ हैं, जिनकी आयु दो पल्य की है। बाह्य सभा के प्रत्येक देवों की देवियाँ ५-५ सौ हैं, जिनकी आयु डेढ़ पल्य प्रमाण है। सौधर्म इन्द्र की जो अग्र देवियाँ हैं उनके भी तीन-तीन सभायें हैं अन्तरंग सभा में २०० देवियाँ है, मध्यम सभा में ६०० देवियाँ हैं और बाह्य सभा में ५०० देवियाँ हैं। इन तीनों ही सभाओं में जो देवियाँ हैं वे ढाई पल्य की स्थिति आयु वाली हैं।

सौधर्म इन्द्र के अनीक व अनीकपरिवार का वर्णन—सौधर्म इन्द्र की ७ सेनायें हैं उन ७ सेनाओं के नाम हैं—पदाति, अश्व, गज, वृषभ, रथ, नर्तकी और गंधर्व। इन देवों की प्रत्येककी आयु एक पल्य प्रमाण है। और इनके जो प्रधान हैं, ७ सेनाओं के जो मुख्य है वह भी एक पल्य आयु वाली होती है। पदाति सेना में जो मुख्य है उसका नाम है वायु। यह वायु नाम का सेनापति ७ कक्षाओं के परिवार वाला है, याने कक्षा का अर्थ डिवीजन। पहली कक्षा में ८४ लाख पदाति हैं दूसरी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कक्षा में इससे दुगने हैं, तीसरे में इससे दुगने हैं, ऐसी ७ सेनाओं तक ७ कक्षाओं तक दुगने दुगने पदातियों की संख्या है। अश्वों की जो सेना है उसके सेनापति का नाम है हरि और गज सेना के सेनापति का नाम है ऐरावत। वृषभ सेना का सेनापति है दाँमपरित, रथ सेना का सेनापति है मातुली। नर्तकी सेना की जो महत्तरिका है उसका नाम है नीलांजना, गंधर्व सेना का महत्तर है अरिष्टयशस्क। इस तरह इन ६ सेनाओं की सख्या पदाति की सख्या के बराबर है और यह सब विक्रिया के द्वारा की गई है। इन सभी सेनाओं में देव हैं और उन देवों का रूप सुन्दर है मनुष्यों के आकार वाला है। बड़े सुखी हैं। इनको जब कभी वर्षों में क्षुधा वेदना होती है तो इनके कण्ठ से अमृत झरता है, ऐसी विशेषता के ये हैं तो भी ऐसा ही कर्मों का उदय है, ऐसा ही नियोग है कि ये देव इन-इन प्रकार के रूपों के धारण करने में नियुक्त हुआ करते हैं। तो यह जो सेना बताई गई है इतनी लम्बी लम्बी संख्या में यह सब विक्रियाकृत है, और प्राकृत सेना में एक एक सेना की संख्या ६०० है। उन प्राकृत देवों की जो ६०० संख्या है उनके एक एक देव की छह छह सौ देवियाँ हैं। प्रत्येक देवी छह छह देवियों का रूप विक्रिया करने में समर्थ है। ये डेढ़ पल्य आयु वाली हैं। सातों ही सेनाओं के एक एक देव के छह छह सौ देवियाँ हैं, वे डेढ़ पल्य आयु वाली और ६ देवी रूप की विक्रिया करने में समर्थ हैं।

सौधर्म इन्द्र के आत्मरक्ष और आभियोग्य देवों का सपरिवार वर्णन—सौधर्म इन्द्र के आत्मरक्ष ८४ हजार हैं उन सबकी आयु एक पल्य की है और एक-एक देव के दो-दो सौ देवियाँ हैं। प्रत्येक देवी ६ देवी रूप की विक्रिया करने में समर्थ हैं। कुछ अधिक अर्ध पल्य की आयु है। यह सब सौधर्म इन्द्र का परिकर बताया जा रहा है। सौधर्म इन्द्र इन सब में प्रधान यों माने गये हैं कि तीर्थंकर भगवान का गर्भ जन्म आदिक कल्याणक होता है, उन सब कल्याणकों की शोभा रचना प्रबन्ध का यह मुखिया होता है। उसकी आज्ञा में कुबेर आदिक सब अपना-अपना काम करने में नियुक्त रहा करते हैं। सौधर्म इन्द्र के जो आभियोग्य देव हैं उनमें मुख्य देव का नाम है बालक, इसकी एक पल्य की आयु है और जम्बूद्वीप प्रमाण यान और विमान की विक्रिया करने में समर्थ है इसके ६०० देवियाँ प्रत्येक देवी ६ देवी रूप की विक्रिया करने में समर्थ है सबकी आधे-आधे पल्य की स्थिति है।

सौधर्म इन्द्र के लोकपालों का सपरिवार वर्णन—सौधर्म इन्द्र के ४ लोकपाल हैं जो प्रत्येक दिशाओं में एक-एक लोकपाल है। लोकपाल भी बहुत पुण्यवान देव है, इसके प्रति समस्त देवों का बड़ा आदर होता है। लोकपाल भी एकभवावतारी होता है। अर्थात देव भव छोड़कर मनुष्यभव प्राप्त करता है यह और उसी भव से मोक्ष चला जाता है। तो पूर्व दिशा में स्वयम्प्रभ विमान है, उसमें सोम नाम का लोकपाल रहता है, जिसकी ढाई पल्य की आयु है उसके ४ हजार सामानिक देव हैं जोकि ढाई पल्य की आयु वाले हैं, ४ हजार देवियाँ हैं, वे भी ढाई पल्य की आयु की हैं। ऐसे ये सब ४ लोकपाल हैं, इन चारों लोकपालों की ४-४ अग्र देवियाँ हैं। वे भी ढाई पल्य की आयु वाली हैं। इन लोकपालों के भी ३-३ सभायें होती हैं जिनमें सोम नाम के लोकपाल की भीतरी सभा का नाम है ईषा जिसमें ५० देव हैं जो सवा पल्य की आयु वाले हैं इसके मध्यम सभा का नाम है दढा। इसमें ४०० देव सदस्य हैं जो सवा पल्य की आयु वाले हैं इस लोकपाल की बाह्य सभा का नाम है चतुरंता इसमें ५०० देव सदस्य हैं और सवा पल्य की आयु वाले हैं। दक्षिण दिशा में वर्गेष्ट नामक विमान है जिसमें यम नाम का लोकपाल है जिसका वैभव आदिक सब सोम नाम के लोकपाल की तरह है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पश्चिम दिशा में अंजन नामक विमान में वरुण नाम का लोकपाल है, उसकी कुछ कम तीन पल्य की आयु है, इसकी तीन-तीन सभायें हैं। भीतरी सभा का नाम है ईषा। उसमें ६० देव सदस्य हैं, डेढ़ पल्य की आयु वाले हैं, मध्यम सभा का नाम है दृढ़ा, जिसमें ५०० देव सदस्य हैं, कुछ कम डेढ़ पल्य की आयु है, इसकी बाहरी सभा का नाम है चतुरंगा, उसमें ६०० देव सदस्य हैं और उनकी आयु कुछ अधिक आधे पल्य की है। तीनों ही सभाओं में रहने वाले देवों की देवियां हैं। शेष परिवार वैभव सोम नामक लोकपाल की तरह है। उत्तर दिशा में बल्गू नामक विमान में वैश्रवण नामक लोकपाल है जिसकी आयु तीन पल्य की है, उसकी भी तीन सभायें हैं। अन्तरंग सभा का नाम है ईषा, उसमें ७० देव सदस्य हैं, डेढ़ पल्य की आयु वाले हैं, मध्यम सभा का नाम दृढ़ा है, जिसमें ६०० देव सदस्य हैं, कुछ कम अर्द्ध पल्य की आयु वाले हैं। बाहरी सभा का नाम चतुरंता है। उसमें ७०० देव सदस्य हैं, कुछ अधिक एक पल्य की आयु वाले है। तीनों ही सभाओं में उनके देवों की जो आयु है उससे आधी आयु वाली देवियाँ हैं, शेष वैभव सोम नामक लोकपाल की तरह है। ये चार सौधर्म इन्द्र के लोकपाल हैं। इनके प्रत्येक की अप्सरायें साढ़े तीन करोड़ की संख्या में हैं। सौधर्म का जो इन्द्रक विमान है उस ३१वें पटल के श्रेणी विमान ४३७१ हैं और फैले हुये फुटकर विमान पुष्प प्रकोर्णक विमान ३१९५५९८ (इकतीस लाख पंचानबे हजार पांच सौ अठ्ठानवे) हैं। ये सारे विमान मिलकर ३२ लाख विमान हैं। यह सब सौधर्म कल्प का वर्णन है, उन ३१ ही पटलों में जितनी जो कुछ दक्षिण दिशा, पूर्व दिशा, पश्चिम दिशा और इनके भीतर की जो कुछ रचना है वह सब सौधर्म नामक स्वर्ग कहलाता है।

द्वितीय कल्प ऐशान स्वर्ग के अधिपति ईशान इन्द्र के परिकर का वर्णन—प्रभा नामक ३१ वें इन्द्रक विमान से उत्तर दिशा में ३२वें विमानों से शोभित जो १८वाँ कल्प विमान है उसका स्वामी ईशान नामक इन्द्र है, उसका परिवार सौधर्म इन्द्र के परिवार के समान है। उसके २८ लाख विमान हैं। ३३ त्रायस्त्रिंश हैं, ८० हजार सामानिक देव हैं। ईशान इन्द्र की भी तीन सभायें सात सेनाएं हैं, ८० हजार आत्मरक्ष चार लोकपाल हैं। ईशान इन्द्र के ८ अग्र देवियां हैं जिनके नाम हैं—श्रीमती, सुसीमा सुमित्रा, वसुन्धरा, जंघा, जयसेना, अमला और प्रभा। ईशान इन्द्र के ३२ हजार बल्लभिका हैं, ये बल्लभिकायें अग्र देवियों की तरह प्रिय हैं और अन्य देवियों से विशेष स्थान पाती हैं। इनकी आयु ७ पल्य की है। ईशान इन्द्र के भीतरी सभा का नाम समिता है जिनमें १० हजार देव सदस्य हैं जिनकी आयु ७ पल्य की है। ईशान इन्द्र के मध्यम परिषद का नाम चन्द्रा है, जिसके सदस्य १२ हजार देव हैं। वे सब ६ पल्य की आयु वाले हैं। ईशान इन्द्र की बाहरी सभा का नाम जातु: है, जिसमें १५ हजार देव सदस्य हैं, उन सबकी ५ पल्य की आयु है। ईशान इन्द्र की जो ७ सेनायें हैं उन सेनाओं के जो प्रधान हैं उनके नाम इस प्रकार हैं—पदाति सेना का महत्तर है लघु पराक्रम। अश्व सेना का प्रधान है अमित गति, वृषभ सेना का प्रधान है द्रुमकांत, रथ सेना का महत्तर है, किन्नर, गज सेना का प्रधान है पुष्पदन्त, गंधर्व सेना का प्रधान है गीतयशा और नर्तकी सेना की महत्तरिका है श्वेता। इन सब सेनाओं में से पदाति सेना के प्रधान की ७ कक्षायें हैं, जिनकी पहली कक्षा में ८० हजार देव हैं। दूसरी कक्षा में इससे दूने हैं इस तरह आगे दूने-दूने देव ७वीं कक्षा तक होते हैं। शेष सेनाओं की विक्रिया भी संख्यात हैं वे सब सेना के देव और उनके प्रधान कुछ अधिक एक पल्य की आयु वाले होते हैं। ऐशान स्वर्ग के दक्षिण दिशा में सम नामक विमान में सोम नाम का लोकपाल

http://sahjanandvarnishastra.org/

है, जिनकी आयु साढ़े चार पल्य की है। तीन सभायें हैं, जिनमें भीतरी सभा में ६० देव सदस्य हैं, मध्यम सभा में ५०० देव सदस्य हैं, बाह्य सभा में ६०० देव सदस्य हैं पश्चिम दिशा में सर्वतोभद्र नाम के विमान में यम नाम का लोकपाल है, जिसकी साढ़े चार पल्य की आयु है। शेष वर्णन सोम नामक लोक-पाल की तरह है। उत्तर दिशा में सुभद्र नाम के विमान में वरुण नाम का लोकपाल है, जिसकी आयु ५ पल्य की है, उसकी भी तीन सभायें हैं। भीतरी सभा में ८० देव हैं, मध्यम सभा में ७०० देव सदस्य हैं। बाह्य सभा में ८०० देव सदस्य हैं। पूर्व दिशा में अमित नामक विमान वैश्रवण नामक लोकपाल है। जिसकी आयु पौने पांच पल्य की है। उसके भीतरी सभा में ७० देव सदस्य हैं, मध्यम सभा में ६०० देव सदस्य हैं, बाहरी सभा में ७०० देव सदस्य हैं, ईशान इन्द्र का जो मुख्य आभियोग्य है इसका नाम है पुष्पक। यह बालक के समान है और जम्बूद्वीप प्रमाण यान विमान रूप विक्रिया करने में समर्थ है। इस देव का यही नियोग है कि अपने स्वामी के विहार आदिक के समय किसी यान विमान आदिक की विक्रिया करते हैं। शेष सब कुछ वर्णन सौधर्म स्वर्ग की तरह जानना। इस तरह उत्तर श्रेणी के विमान और आसपास के फैले हुये प्रकीर्णक विमान इन सबका स्वामी ईशान इन्द्र है, जिसका वर्णन हुआ। यहाँ तक प्रथम और द्वितीय स्वर्ग का वर्णन समाप्त होता है।

सानत्कुमार नामक तृतीय कल्प तृतीय स्वर्ग के अधिपति सनत्कुमार इन्द्र के परिकर का वर्णन—३१वें पटल से ऊपर बहुत हजार योजन ऊंचे, तीसरा, चौथा कल्प शुरू होता है, जिसका नाम है सानत्कुमार और माहेन्द्र। उन दोनों स्वर्गों के ७ पटल हैं, जिनके इन्द्रक विमानों के नाम क्रमशः अंजन, वकमाल, नाग, गरुण, लांगल, बलभद्र और चक्र हैं। अंजन विमान से चारों दिशाओं में चार विमान श्रेणियाँ निकली हैं और विदिशाओं में फैलफुट प्रकीर्णक विमान है, एक-एक विमान श्रेणी में ३१ विमान हैं और इस तरह ऊपर के पटलों में एक-एक कम श्रेणी विमान होते गये हैं। दूसरे पटल के चारों ओर ३०-३० श्रेणी विमान हैं, तीसरे पटल में २९-२९ श्रेणी विमान हैं। इस तरह एक-एक कम होते चले गये हैं अन्तिम ७वें पटल तक। तीसरे, चौथे कल्प में ७ पटल हैं और उन पटलों में एक-एक इन्द्रक विमान है और चारों श्रेणियों में श्रेणी विमान हैं, उनका अन्तर याने एक विमान से दूसरे विमान तक का अन्तर लाख-लाख योजन है। इन पटलों में जो अन्तिम पटल है उसका चक्र नामक इन्द्रक विमान से दक्षिण श्रेणी में सुशोभित १५ कल्प विमान हैं जो सौधर्म कल्प के विमान की तरह है। उसका अधिपति सनत्कुमार नाम का इन्द्र है। यह इस कल्प का दक्षिणेन्द्र है। इसके १२ लाख विमान हैं, ३३ त्रायस्त्रिंश हैं, ७२ हजार सामानिक देव हैं। तीन सभायें हैं, ७ सेनायें हैं, ७२ हजार आत्मरक्ष हैं, चार लोकपाल हैं। इस तीसरे इन्द्र के ८ अग्र देवियाँ हैं जिनकी आयु ९ पल्य की है। एक-एक अग्र देवी १५ हजार देवियों के परिवार सहित हैं और वे ३२ हजार देवी के रूप विक्रिया करने में समर्थ हैं। इस तृतीय इन्द्र के ८ हजार और वल्लभिकायें हैं, जिनकी आयु ९ पल्य की है और ३२ हजार देवी रूप विक्रिया करने में समर्थ हैं सनत्कुमार इन्द्र की जो तीन सभायें हैं उनमें से जो भीतरी सभा है, जिसका नाम समिता है उसमें ८ हजार देव पारिषत्क हैं, जिनकी आयु साढ़े तीन सागर से कुछ अधिक है। मध्यम सभा का नाम चन्द्रा है, इसमें पारिषत्क १० हजार देव हैं जिनकी आयु कुछ अधिक साढ़े तीन सागर है। इस इन्द्र के बाहरी परिषद् जिनका नाम जातु है उस सभा में १२ हजार देव पारिषत्क है जिनकी आयु कुछ अधिक साढ़े तीन सागर है। भीतरी सभा में जो देव हैं उनकी प्रत्येक की देवियाँ सात-सात सौ हैं, जिनकी आयु ५ पल्य की है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मध्यम सभा के देव की प्रत्येक की छह-छह सौ देवियां हैं, जिनकी आयु ५ पल्य की है। बाहरी सभा के देवों के प्रत्येक के पाँच-पांच सौ देवियाँ हैं, जिनकी आयु ५ पल्य प्रमाण है। तृतीय इन्द्र के भी ७ सेनायें हैं। प्रथम सेना पदाति है, जिसकी ७ कक्षायें हैं। पहली कक्षा में ७२ हजार देव हैं, दूसरे में इससे दुगुने, तीसरे में इससे भी दुगने, इस तरह दुगने-दुगने ७वीं कक्षा तक जानना चाहिए। तो इन सब और भी शेष की बची हुई ६ सेनाओं में उनके प्रधान हैं, जिनमें प्रत्येक प्रधान के ३०० देवियां हैं, जिनकी ५ पल्य की आयु है। आत्मरक्ष देवों में प्रत्येक के १००-१०० देवियाँ हैं जिनकी आयु ५ पल्य है। इस तृतीय इन्द्र के आभियोग्य देव बालक विमान में रहते हैं, जिनकी आयु साढ़े तीन सागर है, उसके ३०० देवियाँ हैं जिनकी आयु ५ पल्य है।

सनत्कुमार इन्द्र के लोकपालों का सपरिवार वर्णन—अब तृतीय इन्द्र के लोकपाल का वर्णन करते हैं। ये लोकपाल सभी एक भवावतारी होते हैं। इनके निसर्गत: ज्ञान और वैराग्य की आभा रहती है। साथ ही समस्त देवों को आचरण न्याय आदिक की प्रेरणा करते रहते हैं, पूर्व दिशाओं में स्वयंप्रभ विमान में रहने वाले सोम नामक लोकपाल हैं, दक्षिण दिशा में वजेष्ठ नाम के विमान में रहने वाला यम नाम का लोकपाल है। पश्चिम दिशा में स्वयंजन नाम के विमान में रहने वाला वरुण नाम का लोकपाल है, और उत्तर दिशा में वल्गु विमान में रहने वाला वैश्रवण नाम का लोकपाल है, इस लोकपाल के प्रत्येक के एक-एक हजार सामानिक देव हैं, एक-एक हजार देवियाँ हैं, चार अग्र देवियाँ हैं, तीन सभायें हैं, सोम और यम नाम के लोकपाल की आयु एक सागर की है और वरुण नाम के लोकपाल की आयु सवा सागर है। वैश्रवण नाम के लोकपाल की आयु डेढ़ सागर की है। सोम और यम इन दो लोकपालों की भीतरी सभा में ४०० देव हैं, मध्यम सभा में ३०० देव हैं। बाह्य सभा में ४०० देव हैं और वरुण नाक के लोकपाल की भीतरी सभा में ५० देव हैं, मध्य सभा में ४०० देव हैं। बाह्य सभा में ५०० देव हैं, वैश्रवण नाम के लोकपाल की भीतरी सभा में ६० देव, मध्यम सभा में ५०० देव, बाह्य सभा में ६०० देव हैं, चारों ही लोकपालों की भीतरी सभा में देवों की आयु तीन सागर है, प्रत्येक की १००-१०० देवियां हैं और इनके ही चारों मध्यम सभाओं में देवों की आयु कुछ कम तीन सागर है। प्रत्येक देव की ७० देवियां हैं। चारों ही बाह्य सभाओं में जो देव हैं उनकी ढाई सागर की आयु है, प्रत्येक के ५० देवियां हैं। इस प्रकार सानत् कुमार नामक इन्द्र के वैभव का वर्णन हुआ।

माहेन्द्र नामक तृतीय कल्प, तृतीय स्वर्ग के अधिपति महेन्द्र इन्द्र के परिकर का वर्णन—अब महेन्द्र नामक इन्द्र के परिवार और वैभव का वर्णन करते हैं। तृतीय कल्प के अन्तिम पटल के चक्र नामक इन्द्रक विमान से उत्तर दिशा में श्रेणीबद्ध विमानों में २५ विमान से सुशोभित १५ कल्प विमान हैं, जिनका अधिपति महेन्द्र नामक इन्द्र है। इसके ७ लाख विमान हैं, ३३ त्रायस्त्रिंश हैं, ७० हजार सामानिक हैं, तीन सभायें हैं, ७० हजार आत्मरक्ष हैं, चार लोकपाल हैं, ८ अग्र देवियां हैं, अग्र देवियों की आयु ११ पल्य है, इसी प्रकार ८ हजार बल्लभिकायें भी हैं। उनकी भी आयु अग्र रानियों की तरह है। ये रानियाँ बल्लभिकायें कितने परिवार सहित हैं, कितने रूप की विक्रिया कर सकती हैं यह सब तृतीय इन्द्र के अग्र देवियों और बल्लभिकाओं की तरह है। माहेन्द्र नामक इन्द्र की जो तीन सभायें हैं उनमें से भीतरी सभा में ६ हजार देव हैं, मध्यम सभा में ८ हजार देव हैं और बाह्य सभा में १० हजार देव हैं। इन तीनों ही सभाओं में देवों की आयु तृतीय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इन्द्र की सभा के देवों की आयु की तरह है। महेन्द्र नामक इन्द्र के ७ सेनायें हैं, जिनके प्रधान का वर्णन ऐशान इन्द्र के प्रधानों की तरह जानना। ७ सेनाओं में पदाति सेना में ७ डिव.जन (कक्षा) हैं, उसकी प्रथम कक्षा में ७० हजार देव हैं, उससे दूने दूसरी कक्षा में हैं, उससे दूने तीसरी में। इससे दुगने-दुगने ७वीं कक्षा तक पाये जाते हैं। शेष सेनाओं में भी इसी तरह प्रधान आदिक जानना। जिनके प्रत्येक प्रधानों को ३०० देवियां हैं जो ७-७ (सात-सात) पल्य की आयु वाली हैं, आत्मरक्षों की आयु कुछ अधिक साढ़े तीन सागर है। प्रत्येक आत्मरक्षों के १००-१०० देवियाँ हैं, जिनकी आयु प्रत्येक की ७ पल्य है। इस चौथे इन्द्र के भी चार लोकपाल हैं। दक्षिण दिशा में सोम लोकपाल है जो सम नाम के विमान में रहता हैं। पश्चिम दिशा में यम नाम का लोकपाल है जो सर्वतोभद्र नाम के विमान में रहता है। उत्तर दिशा में वरुण नाम का लोकपाल है जिसका आवास सुभद्र नामक विमान में है। पूर्व दिशा में वैश्रवण नामक लोकपाल है, जिसका आवास समित विमान है। प्रत्येक लोकपाल के एक-एक हजार सामानिक देव हैं, एक-एक हजार देवियाँ है, चार अग्र रानियां हैं, तीन सभायें हैं। वरुण नामक लोकपाल की साढ़े तीन सागर आयु है। उससे कुछ कम आयु सोम और यम नाम के लोकपाल की है। सोम और यम लोकपाल की भीतरी सभा में ५० देव हैं, मध्यम सभा में ४०० देव हैं, बाह्य सभा में ५०० देव हैं, वैश्रवण नामक लोकपाल की भीतरी सभा में ६० देव हैं, मध्यम सभा में ५०० देव हैं, बाह्य सभा में ६०० देव हैं, वरुण नाम के लोकपाल की भीतरी सभा में ७० देव हैं, मध्यम सभा में ६०० देव हैं, बाह्य सभा में ७०० देव हैं। इन सभी लोकपालों की भीतरी सभा में जो देव हैं उनके प्रत्येक के १००-१०० देवियां हैं। मध्यम सभा के देवों के प्रत्येक के ७० देवियाँ हैं, बाह्य सभा के देवों के प्रत्येक के ५० देवियां हैं। उन देवों का आयु करीब ३ सागर है। महेन्द्र नाम के इन्द्र का जो आभियोग्य देव है उसका आवास पुष्पक विमान में है। इस आभियोग्य देव की आयु कुछ अधिक साढ़े तीन सागर की है। इस प्रकार तृतीय और चतुर्थ कल्प का वर्णन हुआ।

ब्रह्म स्वर्ग का वर्णन—तृतीय, चतुर्थ कल्प के अन्तिम पटल से ऊपर बहुत लाख योजन ऊंचे ब्रह्मलोक व ब्रह्मोत्तर कल्प हैं। इन कल्पों के चार पटल हैं, जिन पटलों के इन्द्रक विमान के नाम हैं, अथवा उन्हीं नामों से पटल के नाम हैं—अरिष्ट, देव समित, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर। पहले पटल के इन्द्रक विमान से चारों दिशाओं में चार विमान श्रेणियाँ निकली हैं, प्रत्येक दिशा में २४ विमान हैं, वि दशाओं में फैले हुये प्रकीर्णक विमान हैं, इससे ऊपर के पटल में श्रेणी के विमानों में एक कम है अर्थात् २३ है, उसके बाद तोसरे पटल में २२ हैं, चौथे पटल में २१ हैं। उन पटलों का अन्तर बहुत लाख योजन है। इनके अन्तिम पटल के इन्द्रक विमान से दक्षिण की श्रेणी जो २१ विमानों से शोभित है उसमें १२वां जो कल्प विमान है, उसका अधिपति ब्रह्म नाम का इन्द्र है। उसके विमान कुछ अधिक २ लाख हैं, ३३ त्रायस्त्रिंश हैं, ३६ हजार सामानिक हैं, ३ सभायें हैं, ७ सेनायें हैं, ३६ हजार आत्मरक्ष हैं, चार लोकपाल हैं। पद्मा आदिक ८ अग्र रानियाँ हैं, जिनकी आयु १३ पल्य की हैं और प्रत्येक अग्र रानी का परिवार ४ हजार देवियां हैं। इस इन्द्र के २ हजार वल्लभिकायें हैं, जिनकी आयु १३ पल्य की है। प्रत्येक अग्र रानी तथा बल्लभिका ६४ हजार देवो रूपों की विक्रिया करने में समर्थ है। इस इन्द्र के तीन परिषद हैं, जिनमें भीतरी परिषद में ४ हजार देव हैं, जिनकी ८ सागर आयु है। भीतरी परिषद के देवों के प्रत्येक के ५०-५० देवियां हैं, मध्यम परिषद के देवों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के ४०-४० देवियां हैं, बाहरी परिषद के देवों के ३०-३० देवियां हैं। ब्रह्मेन्द्र की ७ सेनायें हैं, जिनके प्रधान साढ़े सात सागर की आयु के हैं, उनमें पदाति सेना के प्रधान हैं वायु, जिसकी ७ कक्षायें हैं। पहली कक्षा में ३६ हजार देव हैं, दूसरे में इससे दुगुने हैं, तीसरी में इससे दुगुने हैं, यों दुगुने-दुगुने ७वीं कक्षा तक हैं। इस सेना प्रधान के परिवार में ढाई सौ-ढाई सौ देवियाँ व चार-चार अग्र देवियां हैं, आत्मरक्ष देव की आयु साढ़े सात सागर है और प्रत्येक आत्मरक्ष के ५० देवियाँ हैं। इस इन्द्र का भी बालक नामक आभियोग्य देव है। इस इन्द्र के पूर्व आदिक दिशाओं में चार लोकपाल हैं। सोम नाम का लोकपाल स्वयंप्रभ विमान में रहता है। यम नाम का लोकपाल बरज्येष्ठ विमान में रहता है। वरुण नाम के लोकपाल का आवास स्वयंजन विमान है। वैश्रवण नामक लोकपाल का आवास बल्गु विमान है, उन प्रत्येक लोकपालों के ५०० सामानिक हैं। चार अग्र देवियां हैं, साढ़े सात सागर की आयु का धनद लोकपाल है। उससे कम आयु वरुण लोकपाल की है, उससे भी कम आयु सोम तथा यम लोकपाल की है। इस लोकपाल की भी तीन-तीन सभायें होती हैं जिनमें सोम यम लोकपाल की भीतरी सभा में ३० देव हैं, मध्यम सभा में २०० देव हैं, बाह्य सभा में ३०० देव हैं। वरुण नामक लोकपाल की भीतरी सभा में ४० देव हैं, मध्यम सभा में ३०० देव हैं, बाहरी सभा में ४० देव हैं। वैश्रवण के लोकपाल की भीतरी सभा में ५० देव हैं, मध्यम सभा में ४०० देव हैं, बाह्य सभा में ५०० देव हैं, भीतरी सभाओं में इन चारों में जो देव हैं उनकी आयु ८ सागर है, मध्यम सभा के देवों की आयु कुछ कम ८ सागर है। बाहरी सभा के देवों की आयु साढ़े सात सागर है। भीतरी सभा के देवों की देवियाँ ५०-५० हैं, मध्यम सभा के देवों की देवियाँ ४०-४० हैं, बाह्य सभा के देवों की देवियाँ ३०-३० हैं। यहाँ तक ब्रह्म स्वर्ग का वर्णन हुआ।

ब्रह्मोत्तर स्वर्ग का वर्णन—इसी पांचवें कल्प में ब्रह्मोत्तर स्वर्ग भी है जिसके अन्तिम पटल के उत्तर श्रेणी के २१ विमानों में जो १२वाँ कल्प विमान है उसका अधिपति ब्रह्मोत्तर नाम का प्रतीन्द्र है, जिसके कुछ कम २ लाख विमान हैं ३३ त्रायस्त्रिंश देव हैं, ३२ हजार सामानिक देव हैं। ३ सभायें हैं, ७ सेनायें हैं, ३२ हजार आत्मरक्ष हैं, ४ लोकपाल हैं, ८ अग्र रानियां हैं, जिनकी आयु १५ पल्य प्रमाण है। २ हजार बल्लभिकायें हैं इनकी भी आयु १५ पल्य है। ब्रह्मोत्तर प्रतीन्द्र के भी तीन सभायें हैं। भीतरी सभा में २ हजार देव हैं, मध्यम सभा में ४ हजार देव हैं और बाहरी सभा में ६ हजार देव हैं। इन परिषदों का परिवार आदिक वर्णन ब्रह्मेन्द्र की तरह समझना, इसका भी पुष्पक नाम का आभियोग्य देव है। इस प्रतीन्द्र की भी ७ सेनायें हैं, जिसमें पदाति सेना की प ली कक्षा में ३२ हजार देव हैं अगली कक्ष में दुगुने-दुगुने देव हैं, इनके भी दक्षिणादिक दिशाओं में सोम आदिक चार लोकपाल हैं, जिनका परिचय ब्रह्मेन्द्र के लोकपाल की तरह है। यहां तक ५वें कल्प का वर्णन समाप्त होता है।

लांतव कापिष्ठ स्वर्ग का वर्णन—इस कल्प के अन्तिम पटल के विमान से लाखों योजन ऊपर लांतव और कापिष्ठ नाम का कल्प आता है इस कल्प में दो पटल हैं जिनके नाम हैं ब्रह्म हृदय और लांतव। आखिरी पटल में जो लांतव नाम का इन्द्रक विमान है उसके दक्षिण श्रेणी में १९ विमान हैं जिनमें ९वाँ जो कल्प विमान है, इसका अधिपति लांतव नाम का इन्द्र है, जिसके कुछ अधिक २५ हजार विमान हैं, ३३ त्रायस्त्रिंश देव हैं, २४ हजार सामानिक हैं, ३ सभायें हैं, ७ सेनायें है, २४ हजार आत्मरक्ष हैं, ४ लोकपाल हैं, ८ अग्र रानियां हैं जिनकी आयु १० पल्य की है, प्रत्येक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अग्र रानी २ हजार देवों के परिवार सहित है, अन्य भी ५०० बल्लभिकायें हैं। इस इन्द्र की भीतरी सभा में एक हजार देव हैं, जिनकी आयु प्रत्येक की कुछ अधिक १० सागर है। इनके प्रत्येक के ८७ देवियाँ हैं, मध्य सभा में २ हजार देव हैं। प्रत्येक की आयु कुछ कम १० सागर है और देवियां ७५-७५ हैं। बाहरी सभा में ४ हजार देव हैं जिनकी आयु मध्यम परिषद के देवों की आयु से कुछ कम है। प्रत्येक देव के ६३ देवियाँ हैं। इस लांतव इन्द्र के बालक नाम का आभियोग्य देव है और ७ देवियाँ हैं, इनकी ७ सेनायें हैं, जिनके प्रधान की आयु मध्यम परिषद के देव की आयु के समान है। सबसे प्रथम कक्षा में २४ हजार देव हैं, उससे दुगुने-दुगुने ७वीं कक्षा तक समझना। प्रत्येक सेना प्रधान के ६०-६० देवियाँ हैं। इस इन्द्र के भी पूर्व आदिक दिशाओं में ४ लोकपाल है, उनके प्रत्येक लोकपाल के ४०० सामानिक देव हैं। २५० देवियाँ हैं, चार अग्र देवियाँ हैं, तीन सभायें हैं, इन लोकपालों के भी तीन-तीन सभायें हैं, जिनमें सोम और यम लोकपाल की भीतरी सभा में २० देव हैं, मध्यम सभा में १०० देव हैं। बाहरी सभा में २०० देव हैं, वरुण नामक लोकपाल की भीतरी सभा में ३० देव हैं, मध्य सभा में २०० देव हैं, बाह्य सभा में ३०० देव हैं, वैश्रवण लोकपाल के भीतरी सभा में ४० देव हैं, मध्य सभा में ३०० देव हैं, बाह्य सभा में ४०० देव हैं, भीतरी सभा के देवों की आयु ११ सागर है, मध्य सभा के देवों की आयु कुछ कम ११ सागर है, बाहरी सभा के देवों की आयु उससे कुछ कम है। इन तीनों सभा के देवों की देवियाँ क्रम से २५, २० और १५ हैं।

कापिष्ठ स्वर्ग का वर्णन—छठे कल्प के द्वितीय पटल के लांतव नामक इन्द्रक विमान से उत्तर श्रेणी में जिसमें १९ विमान हैं, वहाँ ९वाँ कल्प विमान है। उसका अधिपति कापिष्ठ नाम का प्रतीन्द्र है। जिसके कुछ कम २५ हजार विमान हैं, ३३ त्रायस्त्रिंश देव हैं, २२ हजार सामानिक हैं, तीक सभायें हैं, ७ सेनायें हैं, २२ हजार आत्मरक्ष हैं, चार लोकपाल हैं, ८ अग्र रानियाँ हैं, पाँच सौ बल्लभिकायें हैं, ये सब देवियाँ १९ पल्य की आयु की हैं। सभी सेनाओं की प्रथम कक्षा में २२ हजार देव हैं। शेष सब वर्णन लांतव इन्द्र की तरह जानना।

शुक्र महाशुक्र स्वर्ग का वर्णन—लांतव पटल से लाखों योजन ऊपर महाशुक्र नाम का पटल है। यह ७वाँ कल्प है जिसमें शुक्र और महाशुक्र नामक स्वर्ग है। महाशुक्र पटल का महाशुक्र इन्द्रक विमान है, इस इन्द्रक विमान से दक्षिण श्रेणी में जिसमें कि १८ विमान हैं उसमें १२वाँ विमान कल्प विमान है उसमें शुक्र नाम के इन्द्र का आवास है। इस शुक्र नामक इन्द्र के कुछ अधिक बीस हजार विमान हैं, ३३ त्रायस्त्रिंश देव हैं, चौदह हजार सामानिक देव हैं, तीन सभायें हैं, ७ सेनायें हैं, १४ हजार आत्मरक्ष हैं, ४ लोकपाल हैं, पद्मा आदिक ८ अग्र देवियाँ हैं। जिन देवियों का परिवार दस हजार देवियाँ हैं। शुक्र इन्द्र की बल्लभिकाएं ढाई सौ हैं। प्रत्येक बल्लभिका और अग्र देवी २१ पल्य की आयु वाली है, २ हजार देवी रूप अथवा २०५६ देवी रूपों की विक्रिया करने में वे समर्थ हैं। इन्द्र की भीतरी सभा में पाँच सौ देव १४ सागर की आयु वाले हैं। उनमें प्रत्येक के ४३ देवियाँ हैं। मध्यम सभा में एक हजार देव हैं जिनकी कुछ कम १४ सागर आयु है, उनमें प्रत्येक की ३८ देवियाँ हैं, बाहरी सभा में २ हजार देव हैं, जो मध्यम सभा के देवों की आयु से कुछ कम आयु वाले हैं, इन देवों में प्रत्येक देव की ३५ देवियाँ हैं। ७ सेनाओं में जो उनके प्रधान हैं, उनकी आयु बाहरी सभा के देवों की आयु के समान है। उन सबकी प्रथम कक्षा में १४ हजार देव हैं, प्रत्येक देव के पचास देवियाँ हैं। अगली-अगली कक्षा में देवों की दुगुनी-दुगुनी संख्या है। शुक्र इन्द्र का बालक नामक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आभियोग्य देव है। पूर्व आदिक दिशाओं में पहले की तरह सोम आदिक ४ लोकपाल हैं। इनकी भी तीन-तीन सभायें हैं। सोम व यम लोकपाल की भीतरी सभा में ८ देव हैं, मध्यम सभा में पचास देव हैं, बाह्य सभा में सौ देव हैं। यह वर्णन सोम और यम लोकपाल का है। वरुण की भीतरी सभा में बीस देव हैं, मध्यम सभा में सौ देव बाह्य सभा में दो सौ देव हैं। वैश्रवण की भीतरी सभा में बीस देव हैं, मध्यम सभा में दो सौ देव और बाहरी सभा में तीन सौ देव हैं। भीतरी सभा के देवों की आयु १५ सागर है, मध्यम सभा के देवों की आयु कुछ कम १५ सागर है। बाहरी सभा के देवों की आयु साढ़े चौदह है, इनकी देवियों की संख्या क्रम से बीस-पन्द्रह और दस है। यह शुक्र नाम के स्वर्ग का वर्णन है।

महाशुक्र स्वर्ग का वर्णन—अब महाशुक्र स्वर्ग कहाँ है यह बतलाते हैं। महाशुक्र इन्द्रक विमान से उत्तर श्रेणी में जहाँ कि १८ विमान हैं, उनमें १२वाँ कल्प विमान है जिसका अधिपति महाशुक्र नामक प्रतीन्द्र है, जिसके विमान कुछ कम बीस हजार हैं, ३३ त्रायस्त्रिंश हैं, १२ हजार सामानिक हैं, ३ सभाएं हैं, ७ सेनाएं हैं, १२ हजार आत्मरक्ष हैं, ४ लोकपाल हैं, श्रीमती आदिक ८ अग्र रानियां हैं, ढाई सौ बल्लभिकाएं हैं, जिनकी आयु २३ पल्य की है, शेष वर्णन शुक्र स्वर्ग की तरह जानना। तीनों सभाएं, ७ सेनाएं इन सबका वर्णन शुक्र स्वर्ग की तरह जानना। सेनाओं की प्रथम कक्षा में १२ हजार देव हैं आगे दुगने-दुगने हैं। आत्मरक्ष देवों का व पुष्पक नामक आभियोग्य देव का वर्णन शुक्र स्वर्ग के आत्मरक्ष व आभियोग्य की तरह का है, दक्षिण आदिक दिशाओं में सोम आदिक चार लोकपाल हैं, जैसे शुक्र स्वर्ग की बाहरी सभा में देवों की जो आयु है उतनी आयु वरुण लोकपाल की है उससे कुछ कम आयु वैश्रवण लोकपाल की है, उससे कुछ कम आयु सोम और यम लोकपाल की है। इस तरह यह शुक्र महाशुक्र स्वर्गों वाले ७वें कल्प का वर्णन हुआ।

शतार स्वर्ग का वर्णन—अब इस महाशुक्र पटल से लाख योजन ऊपर सहस्रार नाम का एक पटल है, जिसके दक्षिण में शतार स्वर्ग है और उत्तर दिशा में सहस्रार स्वर्ग है। सहस्रार इन्द्रक विमान से दक्षिण में जिसमें कि १७ विमान हैं, उनमें ९वाँ कल्प विमान है, जिसका अधिपति शतार नाम का इन्द्र है, जिसके कुछ अधिक ३ हजार विमान हैं, ३३ त्रायस्त्रिंश हैं, चार हजार आत्मरक्ष हैं, चार लोकपाल हैं, पद्मा आदिक ८ अग्र रानियाँ हैं, जिनकी आयु २५ पल्य की है। प्रत्येक अग्र देवी पाँच सौ देवियों के परिवार सहित है। जो १२ हजार देवी रूप की विक्रिया करने में समर्थ हैं। इस इन्द्र के ६२ बल्लभिकाएं हैं, अग्र रानियों की तरह इनकी आयु और विक्रिया है, इस इन्द्र की भीतरी सभा में ढाई सौ देव हैं जिनकी आयु कुछ अधिक १६ सागर की है। वहाँ प्रत्येक देव की २१-२१ देवियाँ हैं, मध्यम सभा में पाँच सौ देव हैं, जिनकी आयु भी कुछ कम १६ सागर है, प्रत्येक देव की १८ देवियाँ हैं, बाहरी सभा में एक हजार देव हैं, जिनकी आयु मध्यम सभा के देवों की आयु से कुछ कम है। इन देवों के प्रत्येक के १५-१५ देवियां हैं, ७ सेनाओं के प्रधान की आयु बाहरी सभा के देवों की आयु के समान है। सेना की प्रथम कक्षा में ४ हजार देव हैं, जिनके प्रत्येक के चालीस-चालीस देवियाँ हैं। पूर्व आदिक दिशाओं में सोम आदिक चार लोकपाल हैं, जिनमें वैश्रवण लोकपाल की आयु बाहरी सभा के देवों की आयु के बराबर है। उससे कम आयु वरुण नामक लोकपाल की है, उससे कम आयु सोम तथा यम लोकपाल की है। सोम और यम लोकपाल की भीतरी सभा में ५ देव हैं, मध्यम सभा में २५ देव हैं, बाहरी सभा में

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पचास देव हैं। वरुण नामक लोकपाल की भीतरी सभा में दस देव हैं। मध्यम सभा में पचास देव हैं, बाहरी सभा में सौ देव हैं, वैश्रवण नामक लोकपाल की भीतरी सभा में पन्द्रह देव हैं, मध्य सभा में सौ देव हैं, बाहरी सभा में २०० देव हैं, सभी के भीतरी सभा के देवों की आयु सत्तरह सागर है, सध्यम सभा के देवों की आयु कुछ कम सत्तरह सागर है, बाहरी सभा के देवों की आयु साढ़े सोलह सागर है, उन तीनों सभाओं के देवों की देवियाँ क्रमशः पन्द्रह, दस और पांच हैं। यह शतार स्वर्ग का वर्णन हुआ।

सहस्रार स्वर्ग का वर्णन—सहस्रार इन्द्रक विमान से उत्तर श्रेणी में जिसके कि सत्तरह विमान हैं, उसमें ६वें नम्बर का कल्प विमान है, जिसका अधिपति सहस्रार नामक प्रतीन्द्र है, जिसके कुछ कम तीन लाख विमान हैं। ३३ त्रायस्त्रिंश हैं, दो हजार सामानिक हैं, ३ सभाएं हैं, ७ सेनाएं हैं, २ हजार आत्मरक्ष हैं, चार लोकपाल हैं, श्रीमती आदिक ८ अग्र रानियाँ हैं, जिनकी आयु २७ पल्य की है, शेष वर्णन शतार इन्द्र की तरह है। परिषद, आत्मरक्ष, अनीक आभियोग्य इन सबका वर्णन शतार इन्द्र की तरह है। अन्तर सिर्फ इतना है कि सेनाओं के प्रथम कक्ष में २ हजार देव हैं, दक्षिणादिक दिशाओं में सोम आदिक चार लोकपाल हैं, उनके प्रत्येक के २०० सामानिक हैं। ६० देवियाँ हैं, चार अग्र रानियां हैं, तीन सभाएं हैं, शेष वर्णन शतार इन्द्र की तरह है। शतार इन्द्र के बाहरी सभा के देवों की आयु के समान वरुण लोकपाल की आयु है। उससे कुछ कम धनंद अर्थात् वैश्रवण लोकपाल की है। उससे भी कुछ कम आयु सोम और यम लोकपाल की है। इन सबका वर्णन शतार इन्द्र की तरह जानना।

आनत प्राणत आरण व अच्युत स्वर्गवासी देवों का वर्णन—सहस्रार नामक इन्द्रक विमान से अथवा पटल से लाख योजन ऊपर आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्प है, जिनके ६ पटल हैं, जिनके नाम हैं -आनत, प्राणत, पुष्पक, सातक, आरण और अच्युत। पहला पटल है आनत उसके इन्द्रक विमान का नाम है आनत। इस विमान से चारों ही दिशाओं में चार विमान श्रेणियाँ निकली हैं और विदिशाओं में प्रकीर्णक विमान है। इसमें प्रत्येक विमान श्रेणी में सोलह श्रेणी विमान हैं। इसी प्रकार ऊपर के ५ पटलों में एक-एक श्रेणी विमान कम होता चला जाता है। आरण अच्युत विमान से दक्षिण श्रेणी में जिसमें कि ग्यारह विमान हैं उसमें छठा कल्प विमान है। उसका अधिपति आरण नाम का इन्द्र है, जिसके तीन सौ पचास विमान हैं, ३३ त्रायस्त्रिंश देव हैं, एक हजार सामानिक हैं, तीन सभायें हैं, ७ सेनाएं हैं, एक हजार आत्मरक्ष हैं, चार लोकपाल हैं, पद्मा आदिक ८ अग्र रानियाँ हैं, जिनकी आयु ४८ पल्य की है। प्रत्येक अग्र रानी २५० देवियों के परिवार सहित है वह दस लाख देवी रूपों की विक्रिया में समर्थ है। इस इन्द्र की बल्लकाभिकाएं पन्द्रह हैं जिनकी आयु और विक्रिया अग्र रानियों की तरह है। इस इन्द्र की भीतरी सभा में एक सौ पच्चीस देव हैं, उनके प्रत्येक की दस-दस देवियां हैं, जिनकी आयु कुछ अधिक बीस सागर की है। मध्यम सभा में दो सौ पचास देव हैं, जिनके प्रत्येक की ८ देवियाँ हैं, जिनकी आयु कुछ कम इक्कीस सागर की है। बाहरी सभा में पांच सौ देव हैं, जिनकी आयु साढ़े उन्नीस सागर की है। प्रत्येक के ६-६ देवियां हैं। सेनाओं की प्रथम कक्षा में एक हजार देव हैं। इन सभी देवों के तथा उनके प्रधानों के प्रत्येक के तीस-तीस देवियां हैं। आत्मरक्ष देवों की व आभियोग्य देव की मध्यम सभा के देवों की आयु से कुछ कम आयु है। तीस देवियां है। पूर्व आदिक दिशाओं में चार लोकपाल हैं जिनके प्रत्येक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के सौ सामानिक हैं, ३२ देवियां हैं, चार अग्र रानियां हैं। तीन सभायें हैं, बाह्य सभा के देवों के समान वैश्रवण की आयु है। इससे कम वरुण की उससे कम सोम और यम लोकपाल की है। सोम और यम नामक लोकपाल की भीतरी सभा में ३ देव हैं। मध्यम सभा में १२ और बाह्य सभा में २५ देव हैं। वरुण लोकपाल की भीतरी सभा में ५ देव, मध्यम सभामें २५ और बाह्य सभा में ५० देव हैं। वैश्रवण लोकपाल की भीतरी सभा में ६ देव, मध्यम सभा में ५० और बाह्य सभा में १०० देव हैं जिनकी आयु क्रमसे २१ सागर तथा कुछ कम २१ सागर तथा साढ़े २० सागर है। इनकी देवियां क्रमसे ७, ५, और ३ हैं। अच्युत विमान से उत्तर दिशा में जो श्रेणी विमान हैं उनकी संख्या है ११। उसमें जो छठा कल्प विमान है उसका अधिपति अच्युत नाम का इन्द्र है, जिसके कुछ कम ३५० विमान हैं। ३३ त्रायस्त्रिंस हैं, एक हजार सामानिक हैं, ३ सभाएं हैं, ७ सेनायें हैं, एक हजार आत्म-रक्ष हैं, ४ लोकपाल हैं। श्रीमती आदिक ८ अग्र रानियां हैं। १५ बल्लभिकायें हैं, जिन सबकी आयु ५५ पल्य की है। शेष वर्णन आरण इन्द्र की तरह जानना। सभायें और उनका परिकर भी आरण इन्द्र की तरह है। आयु में यह विशेषता है कि वरुण की उससे याने आरण इन्द्र के वरुण की आयु से थोड़ी अधिक आयु है। उससे कम आयु धनद लोकपाल की है। उससे भी कम आयु सोम तथा यम लोकपाल की है।

वैमानिक देवों के विमानों की संक्षेप में संख्यादिका कथन—लोकानुयोग के उपदेश से १४ इन्द्र बताये गये हैं। पर यहां १२ इन्द्र ही इष्ट हैं—ब्रह्मोत्तर, कापिष्ठ, महाशुक्र, और सहस्रार इन्द्र ये चार दक्षिण के इन्द्र के अनुवर्ती हैं। आनत और प्राणत इन दो कल्पों मे एक-एक इन्द्र है। इस तरह ४ स्वर्गों के ४ इन्द्र अन्तिम ४ स्वर्गों के ४ इन्द्र और मध्य के ८ स्वर्गों के ४ इन्द्र हैं। इस तरह १२ इन्द्र हैं। सौधर्म इन्द्र के विमानों की संख्या पहले कही ही गयी है। ऐशान में २८ लाख विमान हैं। श्रेणी विमान १४५७ हैं, पुष्प प्रकीर्णक २७९८५४३ हैं। सानतकुमार स्वर्ग में १२ लाख विमान हैं। श्रेणी विमान ५५५ हैं। प्रकीर्णक विमान ११९९४०५ हैं। माहेन्द्र कल्प में ८ लाख विमान हैं। श्रेणी विमान १९६ हैं प्रकीर्णक विमान ७९९८०४ हैं ५वें, ६वें स्वर्ग वाले कल्प में ४ लाख विमान हैं। श्रेणी विमान ३६४ हैं। प्रकीर्णक विमान ३९९६३६ हैं। ७वें, ८वें स्वर्ग वाले कल्प में ५० हजार विमान हैं। श्रेणी विमान १५८ हैं। प्रकीर्णक विमान ४९८४२ हैं इस ९वें, १०वें स्वर्ग वाले कल्प में ४० हजार विमान हैं। श्रेणी विमान ७३ हैं, प्रकीर्णक विमान ३९९०७ हैं। ११वें १२वें स्वर्ग वाले कल्प ६ हजार विमान हैं। श्रेणी विमान ६९, प्रकीर्णक विमान ५९३१ हैं। आरण, अच्युत कल्प में ७०० विमान हैं। श्रेणी विमान ३३० हैं। प्रकीर्णक विमान ३०७ हैं। इन चौदह कल्पों में अथवा बारह कल्पों में विमान संख्या ८४९६७०० है। यहां तक कल्पोपन्न वैमानिक देव हैं।

ग्रैवेयक विमानों व ग्रैवेयकविमान वासी देवों का संक्षिप्त वर्णन—आरण, अच्युत विमान से लाखों योजन ऊपर ग्रैवेयक विमान शुरू होता है। पहले अधोग्रैवेयक विमान है। इसमें ३ पटल हैं जिसके नाम हैं—सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध। पहले पटल के इन्द्रक विमान का नाम भी सुदर्शन है। इस विमान से चारों दिशाओं में ४ विमान श्रेणियाँ हैं। एक-एक श्रेणी में दस-दस विमान हैं। सुदर्शन से लाख योजन ऊपर अमोघ नाम का दूसरा पटल है। यहां भी चारों दिशाओं में ४ श्रेणियां हैं। एक-एक श्रेणी में ९-९ विमान हैं। अमोघ नाम के दूसरे पटल से ऊपर लाख योजन जाकर सुप्रबुद्ध नाम का पटल है। यही इसका इन्द्रक विमान है। यहाँ भी चारों दिशाओं में चार विमान श्रेणी हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एक-एक विमान श्रेणी में ८-८ विमान हैं। इन तीनों ही पटलों में फैले हुए प्रकीर्णक विमान नहीं हैं, याने एक श्रेणी और इन्द्रक विमान ही हैं। वे सब १११ विमान हैं। तीसरे पटल से ऊपर लाख योजन जाकर मध्यम ग्रैवेयक विमान है जिसमें ३ पटल हैं। जिसके नाम हैं—यशोधरा, सुभद्र, और विशाल यही इन पटलों के इन्द्रक विमानों के नाम हैं। पहले पटल के चारों दिशाओं में श्रेणी विमान हैं। जिनमें ७-७ श्रेणी विमान हैं। दूसरे पटल के चारों दिशाओं में ६-६ श्रेणी विमान हैं। दूसरे पटल के चारों दिशाओं में ५-५ श्रेणी विमान हैं। ये सब श्रेणी विमान ७५ हैं। यहाँ पुष्प प्रकीर्णक विमान भी हैं जिनकी संख्या ३२ है। ये सब मिलकर १०७ विमान हैं। मध्यम ग्रैवेयक के अन्तिम पटल से लाख योजन ऊपर उपरिम ग्रैवेयक जिनके ३ पटल हैं उनका नाम है सुमन, सौमन और प्रीतिकर। ये ही नाम इसके इन्द्रक विमानों के हैं। पहले पटल में इन्द्रक विमान से चारों दिशाओं में ४ श्रेणी विमान हैं जिनमें ४-४ विमान हैं। दूसरे पटल में श्रेणी विमान ३-३ हैं। तीसरे पटल में श्रेणी विमान २-२ हैं। ये सब ४९ श्रेणी विमान हैं। यहाँ ५२ पुष्प प्रकीर्णक विमान हैं। ये सब मिलकर ९१ विमान हैं यहां तक ग्रैवेयक कहलाते हैं। इसमें रहने वाले देव सब अहिमिन्द्र हैं। सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनों प्रकार के देव पाये जाते हैं। ये प्रवीचार रहित हैं। इनके देवियां नहीं होतीं।

अनुदिश और अनुत्तर विमानों का तथा उसमें रहने वाले देवों का वर्णन—अब ग्रैवेयक विमान के अन्तिम पटल से लाख योजन ऊपर अनुदिश विमान आता है। जिसमें केवल एक ही पटल है, जिसका नाम है आदित्य। उसकी दिशा और विदिशाओं में ४-४ श्रेणी विमान हैं। पूर्व दिशा में अर्ची नामक विमान है, दक्षिण दिशा में अर्चिमाली नामका विमान है। पश्चिम दिशा में वैरोचन नाम का विमान है, उत्तर दिशा में प्रभास विमान है। विदिशाओं में ४ पुष्प प्रकीर्णक हैं ये पूर्व और दक्षिण के बीच में अर्चीप्रभ विमान है। दक्षिण पश्चिम के बीच में अर्चिमध्य विमान है। पश्चिम और उत्तर के बीच में अर्चिरावर्त विमान है। उत्तर पूर्व के बीच में अर्चिराविशिष्ट विमान है। ये सब ९ विमान हैं। यहां तक ये अनुदिश कहलाते हैं। अनुदिश के इस पटल से लाख योजन ऊपर अनुत्तर विमान हैं जहाँ बीच में सर्वार्थ सिद्धि नामक विमान है। दिशाओं में विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित ये पूर्वादिक दिशाओं के क्रम से हैं। यहां पुष्प प्रकीर्णक विमान नहीं हैं। इन विमानों में सम्यग्दृष्टि ही देव हैं और वे सब अहिमिन्द्र होते हैं इनके ३२-३३ सागर की आयु का जीवन तत्त्वचर्चा में व्यतीत होता है। इसके ऊपर बहुत दूर जाकर सिद्धशिला है और उससे और ऊपर अन्तिम बलय में ऊपर सिद्ध लोक है।

वैमानिक देवों के विमानों के विस्तार वर्ण आदि का निर्देश—सौधर्म और ऐशान इन्द्र के विमान १२७ योजन मोटे हैं। १०५ योजन ऊँचे हैं, बाकी के कल्पों में और नवग्रैवेयक अनुदिश और अनुत्तरों में जो विमान हैं उनकी मोटाई १-१ योजन कम होती गई हैं। ये सब इन्द्रक विमान श्रेणी विमान और प्रकीर्णक विमान कोई तो संख्यात योजन विस्तार वाले हैं कोई असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं। जो संख्यात योजन विस्तार वाले हैं वे संख्यात सौ योजन विस्तार के हैं। जो असंख्यात विस्तार वाले कहे गये हैं वे असंख्यात लाख योजन के विस्तार के हैं। सौधर्म और ईसान इन्द्र के विमान पंचवर्ण वाले हैं याने काला, पीला, नीला लाल और सफेद वर्ण के हैं। सनतकुमार और महेन्द्र इन्द्र के विमान ४ वर्ण के हैं। उनमें कृष्ण वर्ण नहीं पाया जाता। ५वें, ६वें, ७वें, ८वें स्वर्ग में विमान ३ वर्ण वाले हैं वहां काला और नीला वर्ण नहीं है। शुक्र स्वर्ग से लेकर अच्युत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वर्ग तक दो वर्ण वाले विमान हैं याने पीले और सफेद वर्ण के विमान हैं। ऊपर शुक्ल वर्ण वाले हैं। सर्वार्थसिद्धि का विमान परम शुक्ल वर्ण का है। इस प्रकार वैमानिक देवों के आवासों का वर्णन किया। अब उन वैमानिक देवों में परस्पर क्या अन्तर है, यह बताने के लिये सूत्र कहते हैं।

स्थिति प्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः ॥२०॥

कुछ विशेषताओं की ऊपर-ऊपर के देवों में अधिकता का ज्ञापन—उन देवों में स्थिति, प्रभाव, सुख, द्युति, लेश्या, विशुद्धि, इन्द्रिय विषय, अवधिज्ञान विषय इनके उत्तरोत्तर अधिकता की विशेषता है। स्थिति का अर्थ है कि अपनी पूर्व बांधी हुई देव आयु कर्म के उदय से उस देव भव में शरीर में जीव के बने रहने को स्थिति कहते हैं। याने आयु, आयु की स्थिति की ऊपर-ऊपर के पटलों में स्वर्गों में वैमानिकों की अधिकता है। पहले दूसरे स्वर्ग से तीसरे, चौथे स्वर्ग की आयु अधिक है, ऊपर-ऊपर के देवों में अधिक होती गई है। प्रभाव का अर्थ है—उत्कृष्ट भाव, याने जो शाप दें तो अनिष्ट हो जाये, जिस पर कृपा दृष्टि बने उनका भला हो जाये, इस तरह का प्रकृष्ट भाव हो वह प्रभाव है। प्रभाव की अपेक्षा ऊपर-ऊपर के वैमानिक देवों में वृद्धि है। साता वेदनीय का उदय होने पर अपने मन चाहे विषयों का अनुभवन होना सुख कहलाता है। यह विषयानुभवन ऊपर-ऊपर के वैमानिक देवों में अधिक पाया जाता है। भले ही गम्भीरता और विषयों की अनासक्ति के कारण विषयों में प्रवृत्ति न हो लेकिन पुण्य विशेष ऐसा है कि उनके इस प्रकार का सुख नीचे के देवों अपेक्षा कुछ अधिक पाया जाता है। शरीर, वस्त्र, आभूषण आदिक की दीप्ति होने को द्युति कहते हैं। द्युति की अपेक्षा भी ऊपर-ऊपर के देव अधिक-अधिक हैं अर्थात् उनकी कान्ति, वस्त्र, आभूषण की चमक ऊपर के देवों में स्वतः ही विशेष पायी जाती है। लेश्या विशुद्धि अर्थात ऊपर-ऊपर के देवों में लेश्या विशुद्धि याने शुभ अच्छी-अच्छी लेश्या पायी जाती है। इन्द्रिय विषय इन्द्रिय के द्वारा पदार्थों का जानना यह इन्द्रिय विषय है। इन्द्रिय विषय की अपेक्षा भी ऊपर-ऊपर के देव बढ़े-चढ़े हैं। अवधि ज्ञान का विषय भी ऊपर-ऊपर के देवों में अधिकाधिक होता है याने विषय क्षेत्र कितनी दूर तक की बात न जाने ऐसा यह दूरी का ज्ञान ऊपर-ऊपर के देवों में विशेष-विशेष पाया जाता है। इस सूत्र में सर्वप्रथम स्थिति शब्द दिया है क्योंकि कितनी ही बातें बतायी जा रही हैं वे सब स्थितिपूर्वक ही हैं, याने वे जहाँ अवस्थित हैं उनकी ही यह चर्चा है, इस कारण से स्थिति शब्द पहले दिया है कि जिनकी स्थितियाँ हैं, उनका प्रभाव आदिक होता है। यहाँ द्वंद्व समास करके अन्त में तस् प्रत्यय दिया गया है जिसका अर्थ है कि "इन-इन बातों से" ऊपर-ऊपर के देव अधिक होते गए हैं। उनकी क्या स्थिति है, यह एक अलग से प्रसंग आयेगा, और लेश्याओं व अवधि का विषय कितना-कितना है यह भी आगे बताया जायेगा। ऊपर-ऊपर के देवों में प्रभाव क्यों अधिक है अर्थात् विक्रिया में किसी का विग्रह करने में, अनुग्रह करने में अथवा और आभियोग्य आदिक विशेष साधनों में प्रभाव क्यों है ऊपर-ऊपर अधिक कि उनके ऊपर-ऊपर अभिमान मन्द है, संक्लेश अल्प है इस कारण से चाहे प्रवृत्ति रूप में, क्रिया रूप में कम आये बात, लेकिन प्रभाव, देवों के चित्त में विशेष आदर यह अधिक-अधिक पाया जाता है। इस सूत्र में ऊपर-ऊपर के देव किन-किन बातों में ऊंचे-ऊंचे हैं, यह बताकर अब यह बतायेंगे कि किन-किन बातों में ऊपर-ऊपर के देव कम हैं याने किन-किन बातों के ऊपर कमी और विशेष कमी पायी जाती है।

गतिशरीर परिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥२१॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ऊपर-ऊपर के देवों के गति शरीर परिग्रह व अभिमान इन चार बातों की हीनता का वर्णन—गति, शरीर, परिग्रह, अभिमान इन चार बातों में ऊपर-ऊपर के देव हीन हैं। गति का अर्थ है—एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में गमन करना, यह गमन होता है इच्छाओं के कारण कर्मोदयवश। सो ऊपर-ऊपर के देव विषयेच्छाओं से विरक्त हैं, उनके विषय प्रसंग विशेष नहीं होते और ऊपर चलकर तो वे प्रवीचार रहित भी हो जाते हैं अर्थात् जहां विषयों में आसक्ति की हीनता है तो गमन की भी हीनता हो जाती है, किस प्रयोजन से गमन करें, नीचे स्वर्ग के देव मनमाना भोगोपभोग के लिए, अपनी इच्छाओं को शान्त करने के लिये जगह-जगह विहार करते हैं द्वीप समुद्रों में, पर ऊपर-ऊपर के देव मंद कषाय होते हैं, विषयों में आसक्ति उनकी कम होती जाती है। शरीर उनका वैक्रियक है और शरीर की ऊंचाई ऊपर-ऊपर के देवों की कम होती गई है। परिग्रह कहते हैं लोभकषाय के उदय से मूर्छा, ममता, परिणाम होना सो परिग्रह है। परिग्रह भी ऊपर-ऊपर के देवों में कम-कम होता गया है। अभिमान का अर्थ है मान कषाय के उदय से जो एक अहंकार उत्पन्न होता, जिसमें दूसरों को तुच्छ गिना जाता वह भाव है अभिमान। ऊपर के देव अभिमान से हीन होते गये हैं, क्योंकि उनका विशेष पुण्य है। गम्भीरता है, इस कारण ऊपर के देव अभिमान से हीन हैं।

सूत्रोक्त शब्दों के तथाकथित क्रम विन्यास का कारण—इस सूत्र में सबसे पहले गति शब्द दिया है, क्योंकि एक तो अल्प अच है, दो ही स्वर हैं और वे भी लघु स्वर है, इस कारण गति शब्द को पहले दिया। इनके बाद शरीर शब्द रखा, याने परिग्रह से पहले शरीर शब्द दिया है, जिससे यह सूचित होता है कि शरीर के होने पर ही तो परिग्रह की उपपत्ति होती है। किसी भी बाह्य पदार्थ में यह मेरा है ऐसी बुद्धि उसके उत्पन्न होती जिसके शरीर है और शरीर में भी मान बुद्धि है, यहां कोई ऐसी आशंका न करे कि केवली भगवान के भी तो शरीर है मगर परिग्रह की इच्छा नहीं है ? यह शंका यों न करें कि यह अधिकार देवों का है, देव गति के देवों का है और उनके इच्छा भी पायी जाती है। शरीर भी पाया जाता है, और देव रागादिक वाले हैं उनके शरीर अवश्य हैं और शरीर के होने पर परिग्रह के बारे में कोई न कोई किसी अंश में अभिलाषा होना हो रहा है, इस कारण यह शंका युक्त नहीं है। परिग्रह के बाद अभिमान शब्द दिया है जिससे यह सूचना मिलती है कि लोक में जो अभिमान देखा गया यह सब परिग्रह मूलक है इसीलिए परिग्रह पहले रखा है और अभिमान सबसे बाद में लिया गया है। इन दोनों ही सूत्रों में उपरि-उपरि शब्द को अनुवृत्ति आती है जिससे यह सिद्ध है कि ऊपर-ऊपर के देव इन बातों में तो बड़े हैं और इन बातों में वे हीन हैं। सौधर्म ईशान स्वर्ग के देव क्रीडा आदिक के निमित्त से बहुत बड़ी भारी गति करते हैं। द्वीप समुद्र में मनमाना विहार करते हैं। इस तरह ऊपर के देव नहीं करते क्योंकि विषयों के प्रसंग का उनमें वेग नहीं है, और जहां विषय प्रसंग का वेग नहीं तो गति तो विषय प्रसंग के वेग से हुआ करती है। तो गति भी हीन होती है।

वैमानिक देवों के शरीर का प्रमाण—सौधर्म और ईशान इन्द्र के देवों का शरीर ७ हाथ प्रमाण है, तीसरे, चौथे स्वर्ग के देवों का शरीर ६ हाथ प्रमाण है। ५वें, छठे, ७वें, ८वें देवों के शरीर का प्रमाण ५ हाथ का है। ९वें, १०वें, ११वे, १२वें स्वर्ग के देवों का शरीर ४ हाथ प्रमाण है। १३वें, १४वें स्वर्ग के देवों का शरीर साढ़े तीन हाथ प्रमाण है और १५वें, १६वें स्वर्ग के देवों का शरीर तीन हाथ प्रमाण है। अधो ग्रैवेयक में ढाई हाथ प्रमाण शरीर है, मध्यम ग्रैवेयक में देवों का शरीर २

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हाथ प्रमाण है। ऊपर-ऊपर के ग्रैवेयक में और अनुदिश विमानों में देवों का शरीर डेढ़ हाथ प्रमाण है। अनुत्तर विमानों में देवों का शरीर एक हाथ प्रमाण है। इन देवों का ऊपर-ऊपर शरीर छोटा-छोटा पाया जाता है।

ऊपर-ऊपर के देवों में परिग्रह व अभिमान की उत्तरोत्तर हीनता—विमान परिवार आदि परिग्रह भी तथा अभिमान भी ऊपर-ऊपर के देवों में कम-कम होता गया है। इसी प्रकार परिग्रह और अभिमान भी ऊपर-ऊपर के देवों में कम-कम होता गया है, उसका कारण यह है कि ऊपर-ऊपर के देव छोटी-छोटी कषाय वाले हैं, इस कारण उनके संक्लेश कम है। कषाय मन्द होने से संक्लेश कम रहता है, और जब संक्लेश कम है तो अवधिज्ञान में विशुद्धि भी बढ़ जाती है। जहाँ संक्लेश होता है वहाँ अवधिज्ञान हीन हो जाता है। जब अवधिज्ञान में विशुद्धि बढ़ी तो इसी कारण ऊपर-ऊपर के देव नरक गति, तिर्यञ्च गति और मनुष्य गति के देवों को बहुत अच्छी तरह से देखते रहते हैं कि यह शरीर मन के दुःखों से व्याप्त है। तो जहाँ उनको अवधिज्ञान द्वारा यह दिख रहा है ये नीचे नरक तिर्यञ्च मनुष्य शारीरिक मानसिक दुःखों से दबे हुये हैं तो उनको फिर सम्वेग परिणाम भी बढ़ता है और संसार में भयभीतपना भी होता है। तो इन बातों में उत्तरोत्तर अधिकता होने से देवों का इस परिग्रह में अभिमान हीन हो जाता है, क्योंकि परिग्रह दुःख का कारण है और इसके सम्पर्क का परिणाम खोटा होता है। ऊपर-ऊपर के देवों में उपपत्ति भी पहले भव के विशुद्ध परिणाम के कारण भेद के कारण है। जिस जीव ने जैसा निर्मल परिणाम पाया, विशेष पुण्य कर्मबंध किया उसके अनुसार ऊपर-ऊपर के देवों में उनकी उत्पत्ति होती है, यही कारण है कि उनका संस्कार पहले ही भव से नम्रता का है, मन्द कषाय का है, इसलिये ऊपर के देवों में अभिमान की हीनता है, जैसे असंज्ञी तिर्यञ्च पर्याप्त पञ्चेन्द्रिय संख्यात वर्ष की आयु वाले, साधारण शुभ परिणाम वाले पुण्य बंध का अनुभव करके भवनवासी और व्यन्तरों में उत्पन्न होते हैं और वे ही अर्थात् संख्यात वर्षायुष्क पर्याप्त तिर्यंन्च संज्ञी मिथ्यादृष्टि अथवा द्वितीय गुणस्थान वाले १२वें स्वर्ग तक उत्पन्न होते हैं और सम्यग्दृष्टि श्रावक अच्युत स्वर्ग तक उत्पन्न हो लेते हैं। भोगभूमिया तिर्यंन्च मनुष्य पहले दूसरे गुण स्थान वाले भवनत्रिकों में उत्पन्न हो लेते हैं और वे ही सम्यग्दृष्टि तिर्यन्च मनुष्य पहले और दूसरे स्वर्ग में जन्म पाते हैं। वापसी भी इन दो स्वर्गों में जन्म पाते हैं, मनुष्य कर्मभूमिया पहले दूसरे गुण स्थान वाले भवनवासी से लेकर उपरिम ग्रैवेयक तक जन्म पाते हैं। परिव्राजकों की उत्पत्ति पंचम स्वर्ग तक है। आजीविकों की उत्पत्ति १२वें स्वर्ग तक है। उससे ऊपर अन्य लिङ्ग वालों का उपपाद नहीं है। श्रावक १६ स्वर्ग तक उत्पन्न होते हैं व उससे ऊपर निर्ग्रन्थलिङ्गधारी उत्कृष्ट तपस्या वाले उत्कृष्ट पुण्य वाले उत्पन्न होते हैं। ग्रैवेयक से ऊपर सम्यग्दृष्टियों का ही जन्म है। सम्यग्दृष्टि श्रावकों का जन्म पहले स्वर्ग से १६वें स्वर्ग तक है। इस तरह अपने-अपने विशेष पुण्य से ऊपर-ऊपर देवों में जन्म होता है। सो यों पुण्य की विशेषताओं व मन्द कषाय के कारण ऊपर-ऊपर के देवों में अभिमान हीन-हीन होता है।

पीत पद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥४-२२॥

वैमानिक देवों में लेश्या का विवरण—स्वर्गों में और स्वर्गों से ऊपर के विमानों में रहने वाले वैमानिक देवों में कैसी लेश्यायें होती हैं इसका वर्णन इस सूत्र में है। सूत्र का अर्थ है कि तीन दो-दो कल्पों में, और ऊपर के शेष सब विमानों में पीत लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्यायें होती

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं, सामान्यतया अर्थ यह हुआ कि सौधर्म ईशान यह एक कल्प युगल है। सानत कुमार माहेन्द्र यह दूसरा कल्प युगल है इन कल्पों में पीत लेश्या होती है। इसके ऊपर ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ठ यह एक कल्पयुगल है और शुक्र, महाशुक्र शतार और सहस्रार यह दूसरा कल्प युगल है, इनमें पद्म लेश्या होती है। आनत, प्राणत यह पहला कल्प युगल है और आरण अच्युत यह दूसरा कल्प युगल है, इनमें शुक्ल लेश्या होती है। इसके ऊपर तीन नीचे के ग्रैवेयकों में ३ मध्य के ग्रैवेग्रकों में और ३ ऊपर के ग्रैवेयकों में शुक्ल लेश्या होती है। इसके ऊपर जो और शेष रहे ६ अनुदिश ५ अनुत्तर इन विमानों में शुक्ल लेश्या होती है।

प्रकृत सूत्र का इस स्थल में औचित्य—शंकाकार कहता है कि यह सूत्र तो वहां ही कह जाना था जहां कि भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी इन तीन निकाय के देवों में लेश्यायें बतायी गई थीं। वह सूत्र है—आदितस्त्रिषु पीतांतलेश्या सो इस ही सूत्र के बाद यह सूत्र जोड़ देते। तो फिर अलग से यह सूत्र नहीं कहना पड़ता। इस शंका के समाधान में कहते हैं कि यदि इस सूत्र को उस पहले सूत्र के साथ जोड़ दिया जाता तो इसका भाव स्पष्ट कहने के लिये और जानने के लिये कि अब सौधर्म आदिक के देवों की लेश्यायें बतायी जा रही हैं, सो सौधर्म आदिक शब्दों को वहाँ ग्रहण कहना पड़ता और फिर सूत्र बड़ा हो जाता। और यदि सौधर्म आदिक शब्दों को न कहते तो इसका अर्थ स्पष्ट न रहता। अच्छा यहां सूत्र कहना क्यों ठीक है? देखो यह वैमानिक देवों के वर्णन का प्रकरण ही है। जहां वैमानिकाः यह सूत्र आया था उसके बाद जो भी कथन हो रहा है वह सब वैमानिक देवों के विषय में कथन हो रहा है इस कारण सौधर्मादिक शब्द के ग्रहण की जरूरत नहीं पड़ रही है। अतः यह सूत्र यहां ही कहना उचित रहा है।

प्रकृत सूत्रगत पदों का अर्थ— इस सूत्र में दो पद हैं। प्रथम पद में द्वन्द्व समास पूर्वक बहुव्रीहि समास किया गया है जिससे प्रथम पद का अर्थ यह होता है कि पीत पद्म और शुक्ल ये तीन लेश्यायें जिनमें हैं ऐसे ये देव हैं। पीत पद्म शुक्ल इन तीन शब्दों में तो द्वन्द्व समास हुआ और समास होने के पूर्व लेश्या के विशेषण में मूल शब्द था पीता पद्मा व शुक्ला। सो द्वन्द्व समाहार समास होने से आकार की जगह अकार हो गया। यहाँ दूसरा पद है द्वित्रिशेषेषु, यह आधार को बताता है कि किस जगह के रहने वाले देवों में ये लेश्यायें होती हैं। सामान्यतया अर्थ है, दो-दो कल्प, तीन बार और शेष देवों में अथवा तीन दो-दो कल्पों में जिससे ध्वनित होता है १२ कल्पों में याने एक बार दो-दो कल्पों में पीत लेश्या है, इसके बाद दूसरी बार दो-दो कल्पों में पद्म लेश्या है, इसके बाद दो-दो कल्पों में शुक्ल लेश्या है तथा कल्पों से ऊपर के सभी स्थानों के देवों में शुक्ल लेश्या होती है।

द्वित्रिशेषेषु पद से ध्वनित अर्थ—यहाँ शंकाकार कहता है कि इस दूसरे पद को बदलकर "चतुः शेषेषु" यह पद रखना चाहिये था जिसका सीधा अर्थ है कि चार-चार कल्पों में और शेषों में शुक्ल लेश्या होती है। सो पहले भी यह ही बताया गया था कि चार-चार कल्पों में ये लेश्यायें बंटी हैं, स्पष्ट अर्थ भी बन जाता। इस शंका के समाधान में कहते हैं कि यहाँ चतुःशेषेषु न कहकर द्वित्रिशेषेषु कहने से कुछ विशिष्ट अर्थ का बोध होता है, चतुःशेषेषु कहने से अर्थ सामान्य रहता है और और द्वित्रिशेषेषु कहने से अर्थ में यह विशेषता आती है कि सौधर्म और ईशान के देवों में पीत लेश्या है और सानतकुमार और माहेन्द्र के देवों में पीत एवं पद्म लेश्या है। यद्यपि सामान्य कथन में इन चार स्वर्गों में पीत लेश्या कही गयी है पर चार कल्प एक बार में न कहकर दो-दो कल्प कहने से यह अर्थ ध्वनित हुआ कि ऊपर के दो कल्पों में कुछ आगे की भी विशुद्ध लेश्यायें होती हैं, इसी प्रकार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ठ इन दो कल्पों में पद्म लेश्या है और शुक्र, महाशुक्र शतार सहस्रार इन दो कल्पों में पद्म और शुक्ल लेश्या है। यदि चतुशेषेषु कहते तो आगे को विशुद्ध लेश्या ग्रहण न हो सकती थी और इसके बाद भी यह विशेषता साबित होती है कि अन्त के दो-दो कल्पों में याने चार कल्पों में शुक्ल लेश्या होती है, तो इससे ऊपर के वैमानिकों में परम शुक्ल लेश्या होती है। कोई यह जिज्ञासा कर सकता है कि ऐसी मिश्रता की बात सूत्र में तो स्पष्ट है नहीं, फिर कैसे लगा ली गई ? तो उत्तर यह है कि लोक में शब्द व्यवहार ऐसा ही देखा जाता है। जैसे कुछ थोड़ी सी वर्षा हो रही हो और वहाँ एक समूह छाता लगाकर जा रहा हो, मानो ५० पुरुष जा रहे हैं जिनमें ४० लोग अपनी-अपनी छतरी लगाये हैं, तो उन ५० लोगों के प्रति ऐसा लोक व्यवहार होता है कि लोग कहते हैं कि ये सब छात्ते वाले जा रहे हैं तो ऐसे ही जैसे पहले के चार स्वर्गों में पीत लेश्या कहा है तो उससे यह अर्थ बना कि पहले दो स्वर्गों में तो पीत लेश्या ही है, पर जो स्वर्ग पद्म लेश्या वाले स्वर्गों के नीचे है उनमें किसी के पद्म लेश्या भी पायी जाती है, और ऐसे निकट वाले देवों में विशुद्ध लेश्या का संग जोड़ना चतुःशेषेषु ऐसा पद बनाने पर नहीं बना सकते थे क्योंकि वहाँ अनिष्ट अर्थ हो जाता है। दो आदिक शब्द दुहरे अर्थ के बोधक होते हैं, जैसे किसी मनुष्य के प्रति कहा जाये कि यह मनुष्य दो बार भोजन करता है तो उसका अर्थ कहीं यह नहीं लगता कि यह जिन्दगी में दो बार भोजन करता है। उसका अर्थ यों लगता है कि दिन-दिन में रोज-रोज यह दो बार भोजन करता है। तो ऐसे ही दो-दो में लेश्यायें बतायी हैं—तीन बार तो उसका अर्थ चार-चार कल्प हो ही जाता है।

लेश्याओं के संक्रमण का संकेत—लेश्या के प्रकरण में छहों लेश्याओं के जो नाम हैं, उस नाम रूप के अनुसार इन लेश्याओं का सामान्य रूप से अर्थ ज्ञान हो जाता है—जैसे कृष्ण लेश्या का अर्थ है कि भवरे आदिक कृष्ण रंग वाले देहियों के वर्ण की तरह जहाँ खोटे भावों की छाया रहती है वह कृष्ण लेश्या कहलाती है। शरीर पर ऐसा रंग हो तो वह द्रव्य लेश्या कहलाती है और परिणामों में इस जाति का खोटा भाव हो तो वह भाव लेश्या कहलाती है। इन लेश्याओं के अनन्त भेद हो सकते हैं क्योंकि कृष्णता की डिग्रियों में दो डिग्री की कृष्णता, तीन डिग्री की कृष्णता यों चलते-चलते असंख्यात डिग्रियों की कृष्णता है और ऐसी कृष्णता के योग से कृष्ण लेश्या के अनगिनते भेद हो जाते हैं। तो बाह्य द्रव्य लेश्या की दृष्टि से तो अनन्त प्रकार के हैं और भीतरी परिणामों की दृष्टि से असंख्यात लोक प्रमाण, आत्म प्रदेशों के परिमाण बराबर असंख्यात प्रकार की भाव लेश्यायें हो जाती हैं। इन लेश्याओं में परिवर्तन भी होता है, कोई कृष्ण लेश्या वाले जीव नील लेश्या में भी पहुँच जाते हैं। ये नील लेश्या वाले जीव आगे को लेश्याओं में अथवा कृष्ण लेश्या में पहुँच सकते। कृष्ण लेश्या के उत्कृष्ट अंश का और खोटी जगह परिवर्तन नहीं होता क्योंकि कृष्ण लेश्या का उत्कृष्ट अंश, शब्द अधिक खोंटा का वाचक का है, ऐसे ही शुक्ल लेश्या के उत्कृष्ट अंश का और अधिक विशुद्धि में परिणमन नहीं होता क्योंकि शुभ लेश्या का उत्कृष्ट अंश खुद ही उत्कृष्ट विशुद्धि है। अशुभ लेश्याओं में यदि हल्की लेश्या में परिवर्तन हो तो वह संक्लेश की कमी में होता है। यदि अधिक खोंटी लेश्या में परिवर्तन हो तो वह संक्लेश की वृद्धि में होता है। उन समस्त अंशों को संक्षेप रूप में तीन में शामिल कर लीजिये—जघन्य अंश, मध्यम अंश और उत्कृष्ट अंश। इसी प्रकार जो तीन शुभ लेश्यायें हैं पीत लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या इनमें उत्तरोत्तर शुभ की ओर परि-

http://sahjanandvarnishastra.org/

वर्तन तो विशुद्धि की बढ़वारी से होता है और पूर्व में परिवर्तन अर्थात् शुक्ल लेश्या पीत में पलट जाये, पीत लेश्या पद्म में आ जाये तो यह विशुद्धि की कमी से होता है। कृष्ण लेश्या का जो पहला संक्लेश स्थान है, उससे और बढ़कर कृष्ण लेश्या जगे तो संख्यात असंख्यात अनेक अंशों में संक्लेश बढ़ने से परिवर्तन होता है। कृष्ण लेश्या से घटकर कृष्ण लेश्या ही बनी रहे ऐसी घटना के अनेक अंश कृष्ण लेश्या में हैं। कृष्ण से नील में जाये तो उसमें अधिक अंशों में संक्लेश की हानि चाहिये और तब वह नील लेश्या के उत्कृष्ट स्थान में आता है।

लेश्याओं का उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण—इन लेश्याओं को एक उदाहरण में समझिये कि जैसे कोई ६ पुरुष कहीं मुसाफिरी कर रहे थे। रास्ते में उन्हें कोई पके हुये आमों का पेड़ मिला। तो आम खाने की इच्छा उन छहों के जगी। उनकी इच्छा का तारतम्य ऐसा था कि एक पुरुष तो यह चाहता था कि इस आम के वृक्ष को जड़ से ही काटकर गिरा दें, पीछे मनमाने फल खायें, दूसरे पुरुष के मन में यह इच्छा बनी कि मूल से गिराने से क्या फायदा, तने के ऊपर की एक मोटी शाखा को ही गिरा दें तो उसके ही फल खाने के लिये बहुत होंगे, उन्हें खा लेंगे। तो तीसरे पुरुष के मन में यह इच्छा बनी कि इस बड़ी शाखा को गिराने से क्या लाभ, जो इसमें अन्य शाखायें हैं उनमें से एक शाखा को काटकर गिरा दें फिर मनमाने फल खायें चौथे पुरुष के यह इच्छा बनी कि इन शाखा प्रशाखाओं के गिराने से क्या लाभ, उनमें से किसी शाखा की टहनी तोड़ लें, इतने से फलों से ही पेट भर जायेगा। तो ५वें पुरुष के मन में यह इच्छा बनी कि उन टहनियों के तोड़ने से भी क्या लाभ ? इन गुच्छों में जो पके-पके फल हैं केवल उनको ही तोड़ा जाये और खाया जाये। तो छठे पुरुष के यह इच्छा हुई कि पेड़ पर चढ़ने या फल तोड़ने से क्या फायदा ? यहाँ जमीन में ही इतने पके फल पड़े हैं कि जिनको खाने से ही पेट भर सकता है। तो उन छहों पुरुषों के विकट इच्छा बनी सो जैसे उन इच्छाओं का जैसे तारतम्य है, परिणामों में अशुभपना है ऐसे ही कृष्ण आदिक लेश्याओं में तारतम्य पाया जाता है। कृष्ण लेश्या वाला बड़ा प्रचंड क्रोधी होता है जो किसी भी प्राणी को मारना, बरबाद करना, ऐसा प्रयत्न कृष्ण लेश्या वाले के होता है, उससे कम खोंटापन नील में है, उससे कम खोंटापन कापोत लेश्या में है। और जब खोंटापन नहीं रहता, भावों में दया, दान, पूजा विनय भक्ति आदिक होती है तो वहाँ पीत लेश्या बनती है और उससे भी और विशुद्ध परिणाम होने में पद्म लेश्या और उससे भी अधिक विशुद्ध होने पर शुक्ल लेश्या होती है।

लेश्याओं के छब्बीस अंशों में आयु बंध के व गति बंध के अंशों का संकेत—लेश्याओं के सब २६ अंश होते हैं। जैसे प्रसिद्ध १८ अंश हैं। एक-एक लेश्या में जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट अंश होते हैं, पर खोंटी लेश्या के उत्कृष्ट अंश के करीब भी और भेद पड़ते हैं—आयु बंध न होने की अपेक्षा, ऐसे ही शुक्ल लेश्या के भी उत्कृष्ट अंशों के करीब और ऐसे स्थान हैं जो आयु बध होवे और न बंध होवे इन विशेषताओं से बढ़ जाता है। इन सब २६ अंशों में से बीच के ८ अंश तो आयु बंध के कारण होते हैं और शेष अंश उन-उन गतियों के बंध के कारण होते हैं। पुण्य, पाप कर्मों की ऐसी ही एक खूबी है, जिससे कि ऐसी भिन्न-भिन्न गतियों की और आयु के बंध के परिणाम निमित्त कारण होते हैं, शुक्ल लेश्या के उत्कृष्ट अंश में मरण हो तो वह सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न होता है। कृष्ण लेश्या के उत्कृष्ट अंश से मरण हो तो वह सप्तम नरक में जन्म लेता है। शेष के अंशों में मरण होने पर नाना प्रकार की भिन्न-भिन्न दशाओं में जन्म होता है। इन लेश्याओं के आधार से

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

संख्या क्षेत्र स्पर्शन, काल, अन्तर भाव, अल्प बहुत्व आदिक विधियों से अनेक प्रकार के भेद समझे जाते हैं।

प्राग्ग्रैवेयकेभ्य: कल्पा: ॥४-२३॥

कल्पवासी देवों का परिचय—ग्रैवेयकों से पहले कल्प होते हैं, ग्रैवयकों से पहले कहाँ तक लेना है इसके अर्थ के लिये सौधर्म आदिक का ग्रहण करना चाहिये। यह प्रकरण चूंकि वैमानिक देवों का है इसलिये वैमानिकों में जो सबसे नीचे जगह पर हों उन्हें लेना। तो सौधर्म आदिक तक कल्पवासी होते हैं। यहां यह शंका हो सकती है कि जब सूत्र में सौधर्म आदिक का ग्रहण कर रहे हो तो इस सूत्र को सौधर्म ऐशान इत्यादि सूत्र के बाद ही तुरन्त कह देना चाहिये था। तब बिल्कुल स्पष्ट अर्थ हो जाता कि ग्रैवयकों से पहले सौधर्म आदिक कल्प कहलाते हैं। इस शंका का समाधान यह है कि यदि इस सूत्र को उस बड़े सूत्र के अनुसार ही बोल देते तो स्थिति प्रभाव आदिक जो ३ सूत्र कहे गये हैं उनका व्यवधान बन जाता। फिर उन सूत्रों से यह अर्थ न जाहिर होता कि ऊपर-ऊपर सर्वार्थ-सिद्धि पर्यन्त ये बातें बढ़-बढ़ होती जाती या ये बातें कम-कम होती जाती। अत: उस बड़े सूत्र के बाद इस सूत्र को नहीं कहा गया है किन्तु इस सूत्र का व्यवधान हो जाने पर स्थिति प्रभाव आदिक का अर्थ सिर्फ कल्पवासियों में ही लगेगा याने स्थिति ऊपर-ऊपर के देवों में बढ़ती हुई चली गई है। तो सिर्फ १६ स्वर्गों तक ही अर्थ लगेगा। उसके बाद इस सूत्र का अर्थ नहीं लगता क्योंकि स्थिति आदिक सूत्रों से पहले यह कल्पा: वाला सूत्र रख दिया। तो कल्पवासियों में ही तो अर्थ घटता इस कारण इस २३वें सूत्र को वहाँ न कहकर यहां ही कहना उपयुक्त होता है। अब इस सूत्र का अर्थ हुआ कि ग्रैवयकों से पहले सौधर्मादिक स्वर्ग तक अर्थात् १६वें स्वर्ग से लेकर पहले स्वर्ग तक के ये सब देव कल्प कहलाते हैं अथवा इन स्थानों को कल्प कहते हैं। इन कल्पों में जो रहे उन्हें कल्पवासी कहते हैं।

कल्पातीत देवों का परिचय—अब यहां यह जिज्ञासा हो जाती है कि ग्रैवयकों से पहले तो कल्पवासी कहलाते हैं तो फिर इसके अलावा कौन क्या कहलाते हैं। तो उत्तर उसका यह है कि वे सब कल्पातीत कहलाते हैं। यह निर्णय अपने आप ही सिद्ध हो जाता है। अब यहां एक आशंका यह रह जाती है कि सूत्र में तो यह बताया है कि ग्रैवयकों से पहले कल्प कहलाता है। तो पहले शब्द से तो भवनवासी तक का अर्थ लेना चाहिये, क्योंकि देव चार निकाय वाले कहे गये हैं, भवनवासी व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक। वैमानिकों में १६ स्वर्ग तक एक प्रकार का ढंग है और उससे ऊपर-ऊपर अहिमिन्द्र ही होते हैं। तो ग्रैवयकों से पहले कहाँ तक लेते चले जाना चाहिये, सो यह अवधि भवनवासी तक होना चाहिये। सो समाधान उसका यह है कि यह प्रकरण वैमानिकों का चल रहा है इसलिये जो भी ग्रहण करना है वह सब वैमानिकों तक ही ग्रहण करना है। अब यहाँ कोई यह जिज्ञासा कर सकता है कि अगर भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी कल्पवासियों में नहीं आते तो फिर इनको कल्पातीत कहना चाहिये, याने कल्पों से अलग अतीत हो गये। इसका उत्तर यह है कि पहले सूत्र आया था उपर्युपरि, जिसका अर्थ है कि ये सब ऊपर-ऊपर रचनायें हैं। तो जब कल्पा-तीतों को ग्रैवयकों से ऊपर देखते हैं तो ग्रैवयक विमानों से ऊपर अनुदिश और अनुत्तर तक ही तो आयेंगे। भवनवासी तो सौधर्म स्वर्ग से भी बहुत नीचे है, और इनका निवास तो अधोलोक में है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्योतिषियों का मध्यलोक में है। तो कल्पातीत केवल ग्रैवेयक अनुदिश और अनुत्तर विमानवासी देव ही होते हैं।

ब्रह्मलोकालया लौकान्तिका ॥४-२४॥

लौकान्तिकों के निवास का परिचय—इस सूत्र में लौकान्तिक देवों का निवास बताया गया है। लौकान्तिक देव ब्रह्मलोक आलय वाले होते हैं। अर्थात् इनका निवास ब्रह्मलोक में है। इस सूत्र में दो पद हैं। प्रथम पद का अर्थ है कि ब्रह्मलोक ही है आलय जिसका वे ब्रह्मलोकालय कहलाते हैं। द्वितीय पद का अर्थ है लौकान्तिक देव। यहां यह बात जानना चाहिये कि ब्रह्मलोक ५वें स्वर्ग को कहते हैं, किन्तु ये वैमानिक देव ५वें स्वर्ग में सब जगह नहीं है। ५वें स्वर्ग के अन्त में चार दिशाओं में व चार विदिशाओं में ये रहते हैं। वह भी ब्रह्मलोक ही कहलाता है, लेकिन ब्रह्मलोक का आखिरी भाग है। यह कैसे जाना कि ये लौकांतिक देव ब्रह्मलोक के आखिरी भाग में रहते हैं। यह जाना है लोकान्त शब्द को सुनकर। लौकान्तिक का अर्थ है। लोक के अन्त में होने वाले देव। ब्रह्मलोक के अन्त को लोकान्त कहते हैं और लोकान्त में जो देव होते हैं उन्हें लौकान्तिक देव कहते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि लौकान्तिक देव ब्रह्मलोक में सब जगह नहीं रहते, किन्तु ब्रह्मलोक के अन्त भाग में रहते हैं।

लौकान्तिक देवों की विशेषता—लौकान्तिक का दूसरा अर्थ है लोक याने संसार। उसका अन्त ही जिनका प्रयोजन है वे लौकान्तिक देव हैं। ये लौकान्तिक देव एक भवावतारी होते हैं। वहाँ से चलकर मनुष्य होकर उस ही मनुष्य भव से मोक्ष जाते हैं। अर्थात् जन्म जरा मृत्यु से भरे हुये संसार का अन्त ये कर डालते हैं, इस कारण ये लौकान्तिक देव कहलाते हैं। ये लौकान्तिक देव भी कल्पवासी ही कहलाते हैं फिर भी ये देवर्षि हैं। अन्य सब देवों की दृष्टि में वे महान् माने जाते हैं और ये सब देव अपने ही स्थान पर रहकर धर्मचिन्तन आत्ममनन चर्चा में अपना समस्त समय बिताते हैं। ये प्रवीचार रहित होते हैं। इनके कामवासना नहीं है और न इनके देवियाँ हैं। इस प्रकार वैमानिक नामक निकाय में ही ये लौकान्तिक देव गिने जाते हैं। अब इन लौकान्तिक देवों का विशेष प्रतिपादन करने के लिये सूत्र कहते हैं।

सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥४-२५॥

ब्रह्मलोकान्त के दिशा विदिशा में आवासी लौकान्तिक देवों का परिचय—ब्रह्मलोक के आठों ही दिशाओं विदिशाओं में ये ८ प्रकार के लौकांतिक देव रहते हैं जिनका नाम हैं—सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अरिष्ट। उत्तर व पूर्व दिशा के बीच सारस्वत रहते हैं पूर्व में आदित्य, पूर्व दक्षिण कोण में वह्नि, दक्षिण में अरुण। इसके बाद प्रत्येक विदिशा और दिशा में क्रम से शेष प्रकार के लौकांतिक देव रहते हैं, यह लगा लेना। इनका यह निवास स्थान कहाँ पर है, सो इसे इस तरह समझना कि मध्यलोक में जहाँ अरुण समुद्र है वहाँ से गोल चूड़ी के आकार में ही ऊपर अंधकार चला गया है। सो जैसे-जैसे ऊँचा उठता गया वैसे ही वैसे क्रम से उसका विस्तार बढ़ घट कर मध्य और अन्त में संख्यात योजन मोटा रह गया। यह अन्धकार जहाँ तक ब्रह्मलोक के करीब अन्त तक गया है उसके ऊपर भाग में चारों दिशाओं में २-२ राशियाँ निकली हैं उनके मध्य ये सब लौकांतिक देव रहते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अन्य सोलह प्रकार के वर्ग के लौकांतिक देवों का परिचय—इस सूत्र में दो पद हैं। एक में तो ८ ही प्रकार के लौकाँतिक देवों का नाम रखकर द्वन्द्व समास आ गया है, और दूसरा पद है च। च का अर्थ है और। इस च शब्द से यह बात भी ध्वनित होती है कि इन ८ प्रकार के लौकांतिक देवों के अतिरिक्त और भी लौकांतिक देव होते हैं, याने दिशा विदिशाओं में ये ८ प्रकार के लौकांतिक देव तो हैं ही, मगर एक लौकांतिक से दूसरे लौकांतिक देव के आवास के बीच में जो स्थान है वहाँ भी लौकांतिक देव रहते हैं। और वह इस प्रकार है कि सारस्वत एवं आदित्य के अन्तराल में अग्न्याभ व सूर्याभ नाम के वर्ग के लौकांतिक देव रहते हैं। आगे आदित्य और वह्नि नाम के लौकांतिक देवों के अन्तराल में चंद्राभ और सत्याभ वर्ग के देव रहते हैं। फिर वह्नि और अरुण लौकांतिक देवों के अन्तराल में श्रेयस्कर क्षेमंकर वर्ग के देव रहते हैं। इससे आगे अरुण और गर्दतोय जाति के लौकांतिक देवों के अन्तराल में वृषभेष्ठ कामचार वर्ग के लौकांतिक देव रहते हैं। इसके बाद गर्दतोय और तुषित जाति के लौकांतिक देवों के अन्तराल में निर्माणरज और दिगंतरक्षित वर्ग के लौकांतिक देव रहते हैं। इसके बाद तुषित और अव्याबाध लौकांतिक देवों के अन्तराल में आत्मरक्षित और सर्वरक्षित वर्ग के देव रहते हैं। इसके बाद अव्यबाध और अरिष्ट जाति के लौकांतिक देवों के अन्तराल में मरुत और वसु वर्ग के लौकांतिक देव रहते हैं । इसके बाद अरिष्ट और सारस्वत के अन्तराल में अश्व और विश्व वर्ग के लौकांतिक देव रहते हैं। ये जितने नाम बताये गए हैं ये नाम सब विमानों के हैं और विमानों में रहने वाले देवों के भी साहचर्य के कारण ये ही नाम होते हैं।

लौकांतिक देवों की संख्या—यहाँ इनकी संख्या इस प्रकार जानना कि सारस्वत तो ७०० हैं और आदित्य ७००, वह्नि ७००७ हैं, अरुण भी उतने ही हैं। गर्दतोय ९००९ हैं, तुषित भी उतने ही हैं। अव्याबाध ११०११ हैं। अरिष्ट भी उतने ही हैं। इसके अतिरिक्त जिन लौकांतिक देवों को च शब्द से बताया गया था उनकी संख्या इस प्रकार है। अग्न्याभ के देव ७००७ हैं, सूर्याभ देव ९००९ हैं, चन्द्राभ ये देव ११०११ है, सत्याभ में १३०१३ हैं, श्रेयष्कर में १५०१५ हैं, क्षेमंकर में १७०१७ हैं, वृषभेष्ठ में १९०१९ हैं, कामचर में २१०२१ हैं निर्माणरज में २३०२३ हैं, दिगंतरक्षित में २५०२५ हैं, आत्मरक्षित में २७०२७ हैं, सर्वरक्षित में २९०२९ हैं, मरुत में ३१०३१ हैं वसु में ३३०३३ हैं अश्व में ३५०३५ हैं, विश्व में ३७०३७ हैं, ये सभी २४ प्रकार के लौकांतिक संघ सब मिलकर ४०७८०६ हैं।

लौकांतिक देवों की देवर्षिता, विषयविरतता श्रुतज्ञता व एकभवावतारिता—ये सभी लौकांतिक देव स्वतन्त्र हैं। इनमें न कोई हीन है, न कोई अधिक है। ये सभी विरक्त देव हैं। विषयों में इनको रंच भी प्रेम नहीं है, इसी कारण ये देवर्षि कहलाते हैं और अन्य देवों के लिये ये पूज्यनीय हैं। १४ पूर्व के धारी हैं, निरन्तर ज्ञानभावना में ही मन लगाते रहते हैं, संसार से उद्विग्न रहते हैं, अनित्यभावना, अशरणभावना आदिक बारह भावनाओं में इनका चित्त लगा रहता है। ये अपनी साधना को छोड़कर कहीं विहार नहीं किया करते। केवल तीर्थंकर जब विरक्त होते हैं, उनका तपकल्याणक होता है उस समय तीर्थंकर की विरक्तिका समर्थन करने के लिये और उस विरक्ति पर प्रसन्नता दर्शाने के लिये ये मध्य लोक में आते हैं। इन देवों के ऐसा ही उत्कृष्ट भाव है जो मनुष्य ब्रह्मचर्य की भावना, संसार से उद्वेग व केवल आत्ममनन की दृढ़ भावना वाले होते हैं ऐसे ही लोग इन लौकांतिक देवों में उत्पन्न होते हैं। इनका नाम लौकांतिक है। ये एक भवावतारी हैं। जैसे कि दक्षिण इन्द्र, लोककालसर्वार्थसिद्धि के देव आदिक ये एकभवावतारी हैं। इसी तरह ये भी एक भवाव-

http://sahjanandvarnishastra.org/

तारी हैं। लौकांतिक देव समस्त श्रुत के जानकार होकर भी याने ११ अंग १४ पूर्व के जानकार होकर भी श्रुतकेवली नहीं कहलाते। जैसे कि इन्द्र इतना वृहस्पति होकर भी श्रुतकेवली नहीं कहलाता, इसका कारण यह है कि अंग बाह्य और अन्य भेद के श्रुत इनके नहीं है और संयम भी नहीं है। ये लौकांतिक पवित्र देव हैं, सभी सम्यग्दृष्टि होते हैं। संयम न होने पर भी संयम की निरन्तर भावना रहती है। संयमी अन्तरात्माओं के प्रति इनका आदर रहता है और ये निरन्तर आत्मानुभव, आत्म-चर्चा के प्रति ही इच्छुक रहते हैं। इनका उपयोग इतना विशुद्ध है कि इनके व्यर्थ के मायाजाल के विकल्प होते ही नहीं हैं। ऐसा इन लौकांतिक देवों का प्रसंग पाकर वर्णन किया गया है।

विजयादिषु द्विचरमाः ॥४–२६॥

विजयादिक विमानवासी देवों की द्विभवावतारिता—विजय आदिक द्विचरम अर्थात दो भवावतारी होते हैं। इस सूत्र में दो पद हैं। प्रथम पद तो अधिकरण बताने वाला है अर्थात दो भवावतारी जीव कहाँ होते हैं उसका उत्तर है विजय आदिक में। यहाँ आदि शब्द कहने से प्रकार अर्थ आता है याने विजय की तरह ही जो और स्थान हैं वे विजय आदिक में आते हैं। विजय विमानवासी देव कैसे हैं यहाँ कौन उत्पन्न होता है? सम्यग्दृष्टि होकर और निर्ग्रन्थ होकर ही यहाँ मनुष्यों की उत्पत्ति होती है। अर्थात विजय आदिक विमानों में वे मनुष्य उत्पन्न होते हैं जो सम्यग्दृष्टि और निर्ग्रन्थ हैं अर्थात भावलिङ्गी मुनि ही इन अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होते हैं। तो ऐसे ही वैजयन्त जयन्त, अपराजित विमान हैं। अनुदिश विमानों में भी उत्पन्न होने वाले देवों की भी प्रायः यही विशेषता है। यहाँ अनुत्तर विमानों में ४ विमान लिये गये हैं—विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित। यहाँ सर्वार्थ सिद्धि को ग्रहण नहीं किया, क्योंकि सर्वार्थसिद्धि के देव एक भवावतारी होते हैं। यहाँ सर्व अर्थ सिद्ध हो गये ऐसा अन्वर्थ नाम ही है। सर्वार्थसिद्धि के देव लौकांतिक देवों की तरह एक मनुष्य भव पाकर मोक्ष चले जायेंगे। एक भवावतारी का अर्थ है कि अगला भव मनुष्य भव पाकर उस ही भव से मोक्ष चले जायेंगे, और द्विचरम का अर्थ है दो मनुष्य भव धारण कर मोक्ष चले जायेंगे, और द्विचरम का अर्थ है दो मनु भव धारण कर मोक्ष चले जायेंगे। जैसे विजयादि विमानका कोई देव मरण करके मनुष्य बना। वहाँ पुनः साधना करके फिर देव हुआ। फिर उसके बाद मनुष्य हुआ। उस मनुष्य भव से मोक्ष चला जायगा। यदि सामान्य भवों की दृष्टि से देखें तो तीन भव होते हैं, बीच में जो देव भव मिला उसको भी शामिल करने से तीन भव बन जाते हैं। मगर यहां मनुष्य भव की अपेक्षा ही वर्णन किया जा रहा है कि ये देव जगहों से ज्यादा दो भवावतारी होते हैं।

चरम भवावतारिता के प्रसंग में कुछ ज्ञातव्य तथ्य– वस्तुतः तो चरमपना तो एक ही भव में हो सकता है जिस भव से मोक्ष जाते हैं, पर उसके पहले मनुष्य भव आया तो वह चरम की प्रत्यासत्ति होने से अर्थात् उसके पूर्व निकट का होने से उसे भी उपचार से चरमपना कह देते हैं, मगर उसका अर्थ है अन्तिम के पास वाला भव। अब यहाँ दूसरे पद का अर्थ हुआ, दो चरम मनुष्य भव जिसके हों वे द्विचरम कहलाते हैं। अब यहाँ कुछ जिज्ञासा बन सकती है कि लौकान्तिक देव तो एक भवावतारी है, सर्वार्थसिद्धि के देव भी एक भवावतारी हैं। विजय आदिक वासी देव दो भवावतारी हैं। तो सौधर्म आदिक देवों में क्या व्यवस्था है? समाधान यह है कि एक चरम याने एक भवावतारी जैसे लौकाँतिक और सर्वार्थसिद्धि हैं इसी प्रकार सौधर्म आदिक स्वर्गों के दक्षिणेन्द्र और इनकी पट्ट रानियाँ लोकपाल आदिक के एक चरमपना कहा गया है। इसके अतिरिक्त जो अन्य देव

http://www.jainkosh.org

हैं उनमें नियम नहीं है। एक चरम भी कोई हो सकता और दो चार छह आदिक अनेक भव वाले भी हो सकते। और कितने ही ऐसे होते हैं कि मोक्ष जायेंगे ही नहीं, क्योंकि अभव्यजीव और मिथ्यादृष्टि जीव भी नवग्रैवेयक तक उत्पन्न हो लेते हैं। इस प्रकार वैमानिकाः इस सूत्र से प्रारम्भ करके इस सूत्र तक ११ सूत्रों के द्वारा वैमानिक देवों का निरूपण किया गया है।

औपपादिक मनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥४-२७॥

तिर्यञ्चों का परिचय व देवों के परिचय के बाद तिर्यन्चों का परिचय कराने वाले प्रकृता सूत्र का इस प्रकरण में कहे जाने का प्रयोजन—औपादिक जीव और मनुष्य इनके सिवाय शेष जीव तिर्यन्च कहलाते हैं। सूत्र का यह सामान्य अर्थ हुआ। इस सूत्र से पहले वैमानिक देवों का प्रकरण था। इस अध्याय के प्रारम्भ से ही देवों का प्रकरण चला आ रहा था। उसकी समाप्ति के बाद क्योंकि यहां तक नारकी देव और मनुष्यों का विशेष वर्णन चला था तीसरे और चौथे अध्याय में, तो अवशेष तिर्यन्च बचे, उनका यहाँ परिचय दिया गया है। शंका यहां यह हो सकती है कि तिर्यन्चों का भी थोड़ा प्रकरण चला था पहले। उस ही प्रकरण में इस सूत्र को कह देते याने तिर्यन्च का वर्णन कर देते, वहाँ वर्णन क्यों नहीं किया गया ? तो समाधान इसका यह है कि यदि इस सूत्र को अर्थात् तिर्यन्चों का परिचय यदि पहले तिर्यन्चों के प्रकरण में दिया जाता तो सभी तिर्यन्चों के नाम लेने पड़ते कि कौन-कौन तिर्यन्च कहलाते हैं। और जब देव नारकी मनुष्यों का वर्णन हो चुका तब थोड़े से ही अक्षरों में इस सूत्र ने बता दिया कि इन तीन गति के जीवों को छोड़कर बाकी सब संसारी जीव तिर्यन्च कहलाते हैं।

तीन लोकों के वर्णन के बाद तिर्यन्चों का परिचय कराने का कारण—उक्त वृत्त के अतिरिक्त एक यह भी भाव भरा हुआ है कि जब अधोलोक, मध्यलोक और अर्द्धलोक का खूब वर्णन किया जा चुका और उसके बाद तिर्यन्च का भी परिचय कराया जा रहा है तो यह भी ज्ञान में आ जाये कि तिर्यन्च समस्त लोक में भरे पड़े हैं, इस लोक का कोई भी प्रदेश ऐसा नहीं क्या कि जहाँ तिर्यन्च जीव न पाये जाते हों। तिर्यन्च होते हैं दो प्रकार के (१) सूक्ष्म और, (२) बादर। सूक्ष्म नामकर्म का उदय होने पर सूक्ष्म देह वाले तिर्यन्च होते हैं, वादर नामकर्म का उदय होने पर ये बादर शरीर वाले होते हैं। तों उनमें सूक्ष्म तिर्यन्च तो समस्त लोक में रहा करते हैं, परन्तु वादर तिर्यन्चों का आवास नियत है। हरी वनस्पति में रहें, मनुष्य आदिक के शरीर में रहें, उनके आश्रय से रहा करते हैं तो ये सूक्ष्म तिर्यन्च समस्त लोक में भरे पड़े हैं, यह बात भी यहां तिर्यन्च परिचय में सिद्ध हो जाती है।

सूत्रगत तीनों पदों की सार्थकता का वर्णन—व्याकरण विधि से यहाँ एक जिज्ञासा होती है कि इस सूत्र में जो तीन पद कहे हैं उनके प्रथम पद में दो शब्द दिये हैं। औपपादिक और मनुष्य-और इनका द्वन्द्व समास भी हुआ है। इस समास में दो शब्द हैं उनमें थोड़े अक्षर मनुष्य शब्द में पाये गये। औपपादिक शब्द में अक्षर अधिक हैं। तो द्वन्द्व समास विधि के अनुसार अल्प अक्षर वाला मनुष्य शब्द पहले आना चाहिये। इसे पहले क्यों नहीं दिया गया ? तो उत्तर इसका यह है कि लौकिक दृष्टि से मनुष्यों की अपेक्षा औपपादिक जो देव हैं वह आदरणीय है, अभ्यर्हित है। उसके कारण अल्प अक्षर का उल्लंघन करके औपपादिक शब्द पहले दिया गया हैं। इस सूत्र में दूसरा पद है शेषाः अर्थात् औपपादिक और मनुष्यों को छोड़कर शेष जीव। तो इस शेष में सिद्ध भी आ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाना चाहिए, और इस तरह सिद्ध तिर्यन्च बन जायेंगे। समाधान इसका बिल्कुल स्पष्ट है कि यह सब संसारी जीवों का प्रकरण चल रहा है, इस कारण इस शेष शब्द से शेष के ससारी जोव ही लिये जायेंगे। इस प्रकरण में सिद्ध का कोई प्रसंग नहीं आता। इस सूत्र में तीसरा पद दिया गया है तिर्यग्योनय: अर्थात् तिर्यन्च योनि वाले याने तिर्यन्चों में जिनकी उत्पत्ति होती है, तिर्यन्चों की जो स्थिति है उनका जो लक्षण है उस ढंग में जो पैदा होता हैं वे तिर्यन्च कहलाते हैं। कर्मोदय से जिनमें तिरोभाव प्राप्त हो याने बोझा ढोने योग्य हों नीचे रहें वे तिर्यन्च योनि हैं। कोई ऐसा सोच सकते हैं कि जो मनुष्य बोझा ढोकर चलते हैं या स्वयं पैदल रिक्शा खींचकर चलते हैं ऐसे मनुष्यों को तिर्यन्च कहना चाहिये, क्योंकि वे भी दूसरों के द्वारा बोझा ढोये जाने वाले बनते हैं। समाधान—यह शंका अत्यन्त निर्मूल है, यह विवक्षा है तिर्यन्च नामकर्म का उदय होने पर जा ऐसो योनियां मिलती हैं वे तिर्यन्च कहलाते हैं। मनुष्यों के तो मनुष्य गति नामकर्म का उदय है, वे मनुष्य ही कहलायेंगे, इस प्रकार इस सूत्र में जो बात कहने को शेष रह गयी थी याने तिर्यन्चों का परिचय कराने की बात शेष रह गयी थी, उसका परिचय कराया गया है।

स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिता: ॥४-२८॥

भवनवासी देवों की उत्कृष्ट आयु—असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार और शेष भवनवासियों की उत्कृष्ट स्थिति क्रमश: १ सागर, ३ पल्य, ढाई पल्य, दो पल्य और १ १/२ पल्य प्रमाण है। अब यहां से स्थिति बतलायी जा रही है। प्रकरण से पहले भी स्थिति बतायी गई थी। अब जिन-जिनकी स्थिति बतानी शेष रह गई थी उनको स्थिति बतला रहे हैं।

सौधर्मैशानयो: सागरोपमेऽधिके ॥४-२९॥

सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु—सौधर्म और ऐशान स्वर्गों के देवों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक दो सागर प्रमाण है। यद्यपि उक्त सूत्र में भवनवासियों की स्थिति बताने के वाद व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों को स्थिति बताना क्रम प्राप्त था, मगर उसका उल्लंघन करके जो यहां वैमानिक देवों की स्थिति बतायी जा रही है, उसका कारण यह है कि शेष व्यन्तर और ज्योतिष्कों की स्थिति आगे बतायेंगे और आगे बताने में संक्षिप्त वर्णन हो जायेगा। तो अब यहाँ वैमानिक देवों की स्थिति मे सर्वप्रथम जो स्वर्ग हैं उनमें रहने वाले देवों की स्थिति बतायी है। इस सूत्र में यद्यपि दो शब्द नहीं लिखा है तो भी सागरोपमे द्विवचन है, जिससे यह सिद्ध होता है कि दो सागर प्रमाण उनकी आयु है। यहाँ अधिक शब्द देने से वह ध्वनित होता है कि किसी देव की सौधर्म और ऐशान स्वर्ग में दो सागर से भी कुछ अधिक स्थिति हो जाती है। ऐसी अधिक स्थिति होने का कारण यह है कि किसी जीव ने ज्ञानी पुरुष ने ऊपर के स्वर्ग की स्थिति बांधी थी, पर किसी संक्लेशता के कारण आयु के अपकर्ष के समय स्थिति इतनी घट जाती है कि करीब वह प्रथम द्वितीय स्वर्ग में उत्पन्न होगा। तो ऐसे जीवों को स्थिति कुछ अधिक हो जाया करती है।

सानत्कुमारमाहेन्द्रयो: सप्त ····· ॥४–३०।

तृतीय व चतुर्थ स्वर्ग के उत्कृष्ट आयु—सानत कुमार और माहेन्द्र स्वर्गों में कुछ अधिक ७ सागर को उत्कृष्ट स्थिति होती है। इस सूत्र में दो पद हैं। पहले पद में आधारभू स्वर्ग की बात कही है, दूसरे पद में स्थिति का बात कहो है। यहाँ अधिक शब्द नहीं कहा गया, किंतु पूर्व सूत्र से अनुवृत्ति लेकर यहाँ अधिक अर्थ हो जाता है यह सानत्कुमार तीसरा कल्प है और माहेन्द्र चौथा कल्प है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वर्ग तो १६ होते हैं किंतु कल्प १२ होते हैं। कल्प इन्द्रों की गणना के अनुसार हैं। १६ स्वर्गों में १२ इन्द्र होते हैं और १२ प्रतीन्द्र होते हैं। तो प्रारम्भ के ४ स्वर्ग, ४ कल्प हैं अन्त के ४ स्वर्ग ४ कल्प हैं। मध्य के ८ स्वर्गों में दो दो स्वर्गों में एक-एक कल्प होता है। इसप्रकार तृतीय और चतुर्थ स्वर्ग में आवास करने वाले देवों की स्थिति कुछ अधिक ७ सागर की होती है।

त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥४-३१॥

ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक १० सागर की होती है। लांतव, कापिष्ठ स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक १४ सागर को होती है। शुक्र महाशुक्र स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक १६ सागर की होती है। शतार सहस्रार स्वर्ग के देवों की आयु उत्कृष्ट से उत्कृष्ट कुछ अधिक १८ सागर की होती है। आनत और प्राणत स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट स्थिति २० सागर की होती है। यहाँ इससे अधिक की स्थिति नहीं होती है। कारण यह है कि व्रती मनुष्य इन स्वर्गों में उत्पन्न होते हैं। इससे पहले अनेक प्रकार के सन्यासी, श्रावक व्रत व महाव्रत से रहित भी उत्पन्न हो लेते थे। तो यहाँ की स्थिति जो पुरुष बाँधता है उसकी इस ही योग्य स्थिति रहती है। छेद नहीं होता है। आरण और अच्युत स्वर्ग में २२ सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति होती है। इस सूत्र में ३ पद हैं। प्रथम पद में तो ७ सागर में जितना जितना मिलकर उत्कृष्ट स्थिति बताई गई है उन संख्याओं का निर्देश है। जैसे ३ अधिक ७, ७ अधिक ७, ९ अधिक ७ आदि मिलाते जायें। दूसरे पद से कह अर्थ ध्वनित हुआ कि ७ सागर में इतनी अधिक मिलान होती है। और तीसरा पद है तु अव्यय, वह इस बात को घोषित करता है कि १२ स्वर्ग तक ही कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति होती है। जो उत्कृष्ट स्थिति बताई गई है उससे कुछ अधिक होना १२वें स्वर्ग तक ही है। जैसे कि १३वें, १४वें स्वर्ग में २० सागर की स्थिति बताया तो उससे कुछ अधिक न होगी। कोई शब्द व्यर्थ सा पढ़कर कुछ न कुछ विशिष्ट अर्थ को घोषित किया करता है।

आरणच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥४-३२॥

कल्पातीत देवों की उत्कृष्ट आयु—१६ स्वर्ग तक की उत्कृष्ट स्थिति बताई जा चुकी है। अब स्वर्ग से ऊपर जो विमान हैं उन विमानों में रहने वाले देवों स्थिति बताई जा रही है आरण और अच्युत स्वर्ग से ऊपर नवग्रैवेयकों में एक-एक सागर अधिक स्थिति उत्कृष्ट पाई जाती है, अर्थात १६वें स्वर्ग में २२ सागर की उत्कृष्ट स्थिति थी तो ग्रैवेयकों में तेइस से लेकर ३१ सागर तक की उत्कृष्ट स्थिति हुई। पहले ग्रैवेयक में २३, दूसरे ग्रैवेयक में २४, इस तरह एक-एक अधिक लेकर ९वें ग्रैवेयक में ३१ सागर की स्थिति होती है। इससे ऊपर अनुदिश विमानों में उत्पन्न हुए देवों की उत्कृष्ट स्थिति ३२ सागर की होती है उससे ऊपर विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित इन चार विमानों में उत्पन्न हुये देवों की उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर की होती है। और सर्वार्थसिद्धि में ३३ सागर की ही स्थिति होती है। वहाँ जघन्य स्थिति नहीं है।

कल्पातीत देवों की आयु का प्रतिपादन करने वाले इस सूत्र में ज्ञातव्य कुछ तथ्य—इस सूत्र में अनुदिश शब्द तो दिया नहीं गया, फिर अनुदिश में उत्पन्न होने वाले देवों की आयु कैसे ग्रहण की गई है। उत्तर यह है कि इस सूत्र को जो ग्रैवेयकेषु और विजयादिषु इन दो भिन्न-भिन्न पदों में कहा है उससे ही यह सिद्ध होता है कि यहां अनुदिश और ग्रहण करना क्योंकि यदि अनुदिश ग्रहण न करते की बात होती तो ग्रैवेयक और विजय इन दोनों का समास करके एक ही पद बना देते, यह पद कैसा होता ? ग्रैवेयक विजयादिषु, किन्तु आचार्य महाराज ये इन दो पदों को जुदा-जुदा रखा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। इससे सिद्ध है कि अनुदिश का ग्रहण कर लेवें। यहां एक जिज्ञासा होती है कि अनुदिश में तो एक ही उत्कृष्ट स्थिति बतायी है, ३२ सागर की। और ग्रैवेयकों में उत्कृष्ट स्थिति बतायी है २३ से लेकर ३१ सागर तक। ऐसा अर्थ कैसे ध्वनित हुआ? समाधान यह है कि विजयादिषु की तरह सिर्फ ग्रैवेयकेषु शब्द देते, नवसु शब्द न लगाते तब तो ९ जगह जुदी-जुदी उत्कृष्ट स्थिति न आती, पर नवसु शब्द देने से यह अर्थ ध्वनित होता है कि नवग्रैवयकों में भिन्न-भिन्न उत्कृष्ट स्थिति है। इस सूत्र में सर्वार्थसिद्धि शब्द जो पृथक् से कहा गया है उससे यह ध्वनित हुआ कि सर्वार्थसिद्धि में सभी की ३३ सागर की स्थिति होती है, अन्यथा विजयादिषु की जगह सर्वार्थसिद्धि भो आ जाती, क्योंकि यह अनुत्तर विमान है। पर सर्वार्थसिद्धि को अलग कहने का अर्थ ही यह हुआ कि यहाँ जघन्य स्थिति नहीं हुआ करती है। अब यहां एक जिज्ञासा होती है कि जैसे मनुष्य और तिर्यन्चों में उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति कही गई है, क्या देवों में उत्कृष्ट ही स्थिति होती है। जघन्य स्थिति नहीं होती क्या? तो इस जिज्ञासा के समाधान में अब आगे देवों की की जघन्य स्थितियों का वर्णन चलेगा। जिससे सिद्ध होगा कि देवों में भी जघन्य स्थिति हुआ करती है।

अपरा पल्योपममधिकम् ॥४-३३॥

सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के देवों की जघन्य स्थिति—सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के देवों की जघन्य स्थिति कुछ अधिक एक पल्य प्रमाण है, यह संख्या में नहीं आता है, किन्तु एक उदाहरण द्वारा वह समय समझाया जाता है। मान लीजिये कि कोई दो हजार कोश का गहरा लम्बा, चौड़ा गड्ढा है, उस गड्ढे में बहुत कोमल बाल के इतने छोटे-छोटे टुकड़े हों कि जिनका दूसरा टुकड़ा न हो सके उन बाल के टुकड़ों को उस गड्ढे में ठसाठस भर दिया जाये और ऊपर से खूब हाथी फिराकर ठसाठस कर दिया जाए फिर उस गड्ढे से १००-१०० वर्ष में रोम का एक-एक टुकड़ा निकाला जाये तो जितने वर्षों में वे सब टुकड़े निकल पावे उतने समय को कहते हैं व्यवहार पल्य और व्यवहार पल्य का असंख्यात गुणा होता है उद्धार पल्य और उद्धार पल्य से असंख्यात गुणा समय होता है अद्धा पल्य। यह पल्य की स्थिति बतायी जा रही है। तो इस प्रकार कुछ अधिक एक पल्य सौधर्म और ऐशान के देवों की जघन्य स्थिति जानना। अब इससे ऊपर के स्वर्गादिक की जघन्य स्थिति बताने के लिए सूत्र कहते हैं।

परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा ॥४-३४॥

सौधर्म और ऐशान स्वर्ग से ऊपर के समस्त स्वर्गवासी व कल्पातीत देवों की जघन्य स्थिति—आगे-आगे के देवों की जघन्य स्थिति वह है जो उससे पहले-पहले स्वर्गों की उत्कृष्ट स्थिति होती है। जैसे सौधर्म और ऐशान स्वर्गों के देवों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक दो सागर है, तो सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्ग के देवों की जघन्य स्थिति कुछ अधिक दो सागर प्रमाण है। सानत्कुमार और माहेन्द्र के देवों की जो उत्कृष्ट स्थिति है वह ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर स्वर्ग के देवों की जघन्य स्थिति है। इस प्रकार ऊपर-ऊपर के कल्पों में तथा स्वर्गों के ऊपर नवग्रैवेयकों में, अनुदिश में और विजय, वैजयन्त, जयन्त अपराजितों में जघन्य स्थिति जानना चाहिये। इसके बाद सर्वार्थसिद्धि में जघन्य स्थिति होती ही नहीं है। यहाँ एक शंका खड़ी हो सकती है कि इस सूत्र में जब पूर्वा-पूर्वा शब्द कहने से ही यह अर्थ ध्वनित होता है कि पहले-पहले स्वर्ग की उत्कृष्ट स्थिति ऊपर के स्वर्ग के लिए जघन्य होती है, तब फिर अनन्तरा शब्द कहने की क्या आवश्यकता रही? समाधान यह है कि पूर्वा शब्द का तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कितने ही पहले के बारे में अर्थ ले सकते हैं, पर यहां ऐसा अटपट पूर्व नहीं लेना है कि जैसे कोई कहे कि ७वें, ८वें स्वर्ग के देवों की जघन्य स्थिति पहले दूसरे स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट स्थिति बराबर है, क्योंकि पूर्व तो यह भी हो गया किन्तु ऐसा पूर्व न लेना, अनन्तर पूर्व लेना, अर्थात् जिस कल्प स्वर्ग की जघन्य स्थिति बताना है तो उससे एकदम पहले जो कल्प स्वर्ग हैं उनकी उत्कृष्ट स्थिति बराबर समझना। इस प्रकार ऊर्द्ध लोक के सभी देवों की जघन्य स्थिति का वर्णन हुआ।

नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥४-३५॥

द्वितीयादिक नरकों मे नारकियों की जघन्य स्थिति—अर्द्धलोक के इन जीवों की जघन्य स्थिति बताने के बाद अब शेष जो भी जीव रहे अधोलोक में या मध्यलोक में, उनकी जघन्य स्थिति बतलायी जा रही है। इनमें सबसे पहले नारकियों को जघन्य स्थिति कहनी है। इसकी उत्कृष्ट स्थिति तो तीसरे अध्याय में कह दी गई थी। अब नारकों की जघन्य स्थिति कहने के लिये सूत्र में जैसे लाघव हो उस प्रकार वर्णन करने के ध्येय से द्वितीय आदिक नरकों में जघन्य स्थिति यहाँ बतायी गई है। नारकियों में भी दूसरे आदिक नरकों में वह जघन्य स्थिति है जो उससे अनन्तर पूर्व नरकों की उत्कृष्ट स्थिति है। यहाँ प्रथम नरक की जघन्य स्थिति न बता कर कर द्वितीय आदिक नरकों की जघन्य स्थिति बताने का प्रयोजन है—सूत्र लाघव। इससे पहले सूत्र में जितने भी पद कहे हैं उन सब पदों की अनुवृत्ति इस सूत्र में ली गई है, अतः इस छोटे से सूत्र से ही वह सब अर्थ निकल आता है। दूसरे आदिक नरकों में अनन्तर पूर्व-पूर्व नरकों की उत्कृष्ट स्थिति जघन्य स्थिति कहलाती है। जैसे पहले नरक की उत्कृष्ट स्थिति एक सागर है। तो दूसरे नरक में जघन्य स्थिति एक सागर होगी। दूसरे नरक की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागर है। तो यह तीन सागर जघन्य स्थिति तीसरे नरक में है। इस तरह नीचे-नीचे नरकों की जघन्य स्थिति समझना। अब प्रथम नरक की जघन्य स्थिति बतलाते हैं।

दशवर्ष सहस्राणि प्रथमायां ॥४-३६॥

पहली पृथ्वी में जघन्य स्थिति १० हजार वर्ष की होती है। यहाँ १० हजार वर्ष एक सागर प्रमाण स्थिति के सामने तालाब के एक बूंद की तरह है, बहुत ही कम है। नारकियों को कम से कम १० हजार वर्ष तक नरकों में रहकर दुःख सहना पड़ता है। दुःख इतने कठिन हैं कि जिनका समाचार सुनकर हृदय काँप जाता है। वहाँ एक दूसरे के अंग के टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं, इतने पर भी उनका बीच में मरण नहीं होता। वे ही सब अंग फिर इकट्ठे होकर ठीक हो जाते हैं। यों अनेक बार छिदते-भिदते रहते हैं और वे पृथ्वी के दुःख सर्दी गर्मी के दुःख, बहुत प्रकार के दुःख हैं। उनको यह जीव सहता है। नारकियों की जघन्य स्थिति कहकर अब भवनवासियों की जघन्य स्थिति बतलाते हैं।

भवनेषु च··· ॥४-३७॥

भवनवासी देवों की जघन्य भुज्यमान आयु स्थिति—और भवनवासियों में भी कम से कम १० हजार वर्ष की स्थिति होती है। इस भवनवासियों का स्थान इस राजकुमार नामक पहली पृथ्वी के तीन भाग में से पहले दो भागों में है। यहां ये देव अकृत्रिम भवनों में रहते है, जिनमें मनोहर चैत्यालय हैं। सर्व प्रकार का उन देवों को आराम है लेकिन परिणामों में प्रगति नहीं है। बड़े कौतूहल प्रिय होते हैं। इन्हें कमाना नहीं पड़ता, मुख से खाना भी नहीं पड़ता, इनके भूख लगने कंठ से

http://sahjanandvarnishastra.org/

अमृत झड़कर भूख मिट जाती है। इतने पर भी ये सदा मानसिक दु:ख से दु:खी रहते हैं ऐसे भवनवासियों के देवों की कम से कम आयु १० हजार वर्ष की होती है। अब व्यन्तर देवों की जघन्य स्थिति बताने के लिये सूत्र कहते हैं।

व्यन्तराणां च ॥४-३८॥

व्यन्तर देवों की जघन्य स्थिति—और व्यन्तरों की भी जघन्य स्थिति १० हजार वर्ष की होती है। यहाँ एक प्रश्न हो सकता है कि यहाँ जितनी देवों की नारकियों की जघन्य स्थिति कही गई है उनकी उत्कृष्ट स्थिति पहले कही जा चुकी थी। इस कारण जघन्य स्थिति कहना ठीक है, किन्तु व्यन्तरों की उत्कृष्ट स्थिति अब तक बतायी ही नहीं गई थी। तो व्यन्तरों की पहले उत्कृष्ट स्थिति बताना चाहिये, पश्चात् जघन्य स्थिति। ऐसा क्यों नहीं किया गया? समाधान यह है कि सूत्र प्रणाली में लाघव का बहुत ध्यान रखना पड़ता है और उस लघुता के लिये ये जघन्यादिक कहे गये हैं। उत्कृष्ट स्थिति आगे कहेंगे। यदि यहाँ उत्कृष्ट स्थिति पहले कह देते तो आगे जघन्य स्थिति कहने के लिये १० वर्ष सहस्र यह शब्द दुबारा कहना पड़ता, और यहां कहने से वह पद न कहना पड़ा। इस तरह व्यन्तरों की जघन्य स्थिति यहां ही कहना उत्कृष्ट रहा। व्यन्तर देव भी कम से कम १० हजार वर्ष की आयु को लिये हुये होते हैं। अब व्यन्तरों की उत्कृष्ट स्थिति कहते हैं।

परा पल्योपममधिकम् ॥४-३९॥

व्यन्तर देवों की भुज्यमान उत्कृष्ट आयु स्थिति—व्यन्तरों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक एक पल्य प्रमाण है। यहाँ स्थिति का तो प्रकरण ही चल रहा है, किन्तु उत्कृष्ट है या जघन्य है, इसके निर्देश के लिये कोई शब्द कहना पड़ता है। तो यहाँ परा शब्द कहा है जो कि स्त्रीलिङ्ग में है। यह स्थिति शब्द का विशेषण है। स्थिति शब्द स्त्रीलिङ्ग में है। तो परा शब्द भी स्त्रीलिङ्ग में कहा गया है। व्यन्तरों की उत्कृष्ट से उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक एक पल्य प्रमाण होती है। यहां तक सभी संसारी जीवों की उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति कही जा चुकी है। अब केवल ज्योतिष्क देव ही शेष रहे हैं, उनकी उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति बताते हैं। उसमें से पहले ज्योतिष्कों की उत्कृष्ट स्थिति बतला रहे हैं।

ज्योतिष्काणां च। ४-४०॥

ज्योतिष्क देवों की उत्कृष्ट स्थिति—ज्योतिष्क देवों की भी उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक एक पल्य प्रमाण प्रमाण है। इस सूत्र में पूर्व सूत्र में कहे गये समस्त पदों की अनवृत्ति आती है, जिससे यह अर्थ बना कि ज्योतिषी देवों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक एक पल्य प्रमाण है। अब इन ज्योतिषियों की जघन्य स्थिति कितनी है? यह कहने के लिए सूत्र कहते हैं।

तदष्टभागोऽपरा ॥४-४१॥

ज्योतिष्क देवों की जघन्य स्थिति—ज्योतिषी देवों की जघन्य स्थिति पल्य के ८वें भाग प्रमाण है। इनमें भी चूंकि ज्योतिषी देव ५ प्रकार के हैं अतएव भिन्न-भिन्न प्रकारों में भिन्न-भिन्न प्रकार की स्थितियाँ होती हैं, और जैसे जघन्य स्थिति में बिभिन्नता है इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति में भी विभिन्नता है। जैसे चन्द्र की उत्कृष्ट स्थिति एक लाख वर्ष अधिक पल्य प्रमाण है, ज्योतिषी देवों में चन्द्र इन्द्र होता है और सबसे अधिक इनकी स्थिति प्रभाव आदिक होते हैं। सूर्य देवों की स्थिति एक हजार वर्ष पल्य प्रमाण है। सूर्य प्रतीन्द्र कहा जाता हैं। शुक्रों की उत्कृष्ट स्थिति १००

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वर्ष अधिक पल्य प्रमाण है, बृहस्पतियों की उत्कृष्ट स्थिति पूर्ण एक पल्य प्रमाण है, अधिक नहीं है। शेष जितने भी ग्रह हैं बुध आदिक उन सबकी उत्कृष्ट स्थिति आधे पल्य प्रमाण है, इस प्रकार इन ज्योतिषी देवों की उत्कृष्ट स्थिति विभिन्न-विभिन्न है, इसी प्रकार नक्षत्रों की भी आधे पल्य प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति होती है। यद्यपि ४०वें सूत्र में ज्योतिषियों की उत्कृष्ट स्थिति सामान्य रूप से कह दी गई थी, पर उनके जो ५ भेद हैं और उनमें भी जो कोई विशेष है उन सबकी उत्कृष्ट स्थिति विभिन्न प्रकार की होती है। ज्योतिषी देवों में तारागणों की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्य के चौथे भाग प्रमाण है। अब जघन्य स्थिति का वर्णन करते हैं। तारा और नक्षत्रों की जघन्य स्थिति पल्य के ८वें भाग प्रमाण है और शेष बचे समस्त ज्योतिषी देव सूर्यादिक सभी की जघन्य स्थिति पल्य के चौथे भाग प्रमाण है। अब लौकांतिक देवों की स्थिति कितनी होती है इसका समाधान करते हैं।

लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥४-४२॥

लौकान्तिक देवों की भुज्यमान आयु स्थिति—सभी लौकांतिक देवों की उत्कृष्ट स्थिति ८ सागर प्रमाण होती है। यह स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकार की है अर्थात् एक ही प्रमाण की स्थिति लौकांतिक देवों में होती है। प्रश्न—यहां स्थिति का बनावा क्यों दिखाया जा रहा है जैसे घटपट हैं तो उनकी स्थिति भी स्वयं है ऐसे ही जब ये देह है तो इन की स्थिति भी खुद होती है। उत्तर—घटादिक उपभोग्य पदार्थों की स्थिति भी प्रायः उपभोक्ता के साताअसाता आदि कर्म-विपाकानुसार होती है अन्यथा अनेक समान घट आदि होने पर भी ये क्यों फूटे, दण्डा इन पर ही क्यों पड़ा ? स्पष्ट है, भोक्ता को ये उपभोग्य नहीं होने थे। अथवा यहाँ तो जाव की स्थिति देह में कब तक है ? यह विवक्षा है इसी को स्थिति कहते हैं। इस मोक्षशास्त्र ग्रन्थमें चौथे अध्याय तक जोव पदार्थ का व्याख्यान है और यह चतुर्थ अध्याय का अन्तिम सूत्र है। इस सूत्र के साथ जीव पदार्थ का व्याख्यान हो चुकता है और आगे पंचम अध्याय में अजीव पदार्थ का व्याख्यान चलेगा।

अभाव विलक्षणत्व सूचक जन्मस्थित्यादि षट् धर्म होने से जीव की भावात्मकता की सिद्धि—इस वर्णित जीव पदार्थ के अन्तिम वर्णन के समय जीव के सम्बन्ध में कुछ विशेष जानकारी करने के लिए कहते हैं कि वह जीव एक होकर भी अनेकात्मक है। जिन जीवों का अब तक वर्णन किया गया है वे प्रत्येक जीव एक-एक हैं और वे एक होकर भी अनेकात्मक हैं, क्योंकि यह जीव पदार्थ अभाव से विलक्षण है, अभाव का जो अर्थ है उसमें क्या भेद होंगे ? नहीं। अभाव तो निषेधमात्र है, पर यह तो भावात्मक पदार्थ है, सद्भुत है, तो यह एक होकर भी अनेक रूप हैं, और जीव ही क्या जितने भी पदार्थ हैं वे सब एक-एक होकर भी अनेक रूप होते हैं—जो भी पदार्थ हैं। प्रकृत में जीव की बात कह रहे हैं कि इसमें जन्म, स्थान, स्थिति, विपरिणमन, वृद्धि, अपक्षय और विनाश ये ६ बातें देखी जा रही हैं। तो इन ६ बातों का होना एक भावात्मक पदार्थ को ही सिद्ध करता है। यद्यपि सामान्यतया जीव द्रव्य का जन्म नहीं होता। वह तो अनादि सिद्ध है, फिर भी भिन्न-भिन्न पर्यायों रूप में इसकी मुद्रा बनना यह ही जन्म कहलाता चला जाता है। तो बाह्य और अंतरंग निमित्त को पाकर यह जीव नवीन-नवीन पर्यायों को प्राप्त होता है याने आत्मलाभ करता है। यह ही इसका जन्म है। जैसे मनुष्य गति के उदय से जीव मनुष्य पर्याय रूप से उत्पन्न होता है, तिर्यन्च गति के उदय से जीव तिर्यन्च पर्याय रूप से उत्पन्न होता है, ऐसी नवीन-नवीन पर्यायों में आना, यह ही इसका जन्म है और यह जन्म, यह उत्पाद जीव के सत्त्व को सिद्ध करता है। स्थिति क्या है ? यद्यपि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

द्रव्य की दृष्टि से इसके सदैव स्थिति है, पर इस बाह्य रूप से देखा जाए तो आयु कर्म के उदय के अनुसार उस पर्याय में जीव का बना रहना, यह जीव की स्थिति है, और वृद्धि क्या है कि पूर्व स्वभाव को कायम रखते हुये अधिकता हो जाना वृद्धि है। अपक्षय क्या है ? क्रम से एक देश का जीर्ण होना अपक्षय हैं, और विनाश क्या है ? उस पर्याय की निवृत्ति हो जाना याने वह हट गया, दूसरी पर्याय आयी, वहाँ जो पूर्व पर्याय का हट जाना है यही विनाश कहलाता है। तो इस तरह से जीव पदार्थ में अनन्त रूपता सिद्ध है और यह एक होकर अनेक रूपता जो विदित हुई है इसमें जीव का सत्त्व जाना जाता है। जो सत् है वह एक होकर भी अनेकात्मक है। सभी पदार्थ एक होकर अनेकात्मक होते हैं। जैसे इन ६ बातों को देखकर अनेकात्मकता का बोध किया गया इसी तरह जीव में ज्ञेयत्व, सत्त्व, द्रव्यत्व, अमूर्तपना, अति सूक्ष्मपना, अवगाहनत्व, असंख्यथोष प्रदेशतत्व अनादि निधन होना आदिक की दृष्टि से जीव अनेकात्मक है।

अनेक वाग्विज्ञान विषयत्व होने से जीव के अनेक धर्मात्मकत्व की सिद्धि—यह जीव एक होकर भी अनेकात्मक है। यह इस हेतु से भी सिद्ध होता है कि चूंकि जीव अनेक शब्द और अनेक ज्ञान का विषयभूत है। जिस पदार्थ में जितने शब्दों का प्रयोग हो सकता है समझिये उसमें उतनी ही वाच्य शक्तियां हैं, और इसकी प्रकार जो पदार्थ जितने प्रकार के ज्ञानों का विषयभूत होता है उसमें समझिये उतनी ही ज्ञेय शक्तियाँ हैं। जैसे कोई एक ही घट है, उसमें यह घट है, मिट्टी का बना है सत् है, ज्ञेय है, बड़ा है, नया है आदिक अनेक शब्दों का वहाँ प्रयोग हो रहा है तो इतनी ही बातें पायी भी जा रही हैं और इस प्रकार अनेक ज्ञान भी हो रहे हैं। तो-तो इतना ज्ञेय तत्त्व वहां मौजूद है। इसी तरह आत्मा भी अनेक शब्दों द्वारा वाच्य है। अनेक विशेषणों से उसका बोध किया जाता है और अनेक दृष्टियों का विषयभूत है, सो आत्मा भी अनेक धर्मात्मक है। तो यह जीव एक होकर भी अनेकात्मक है। ऐसे-ऐसे अनन्त जीव हैं।

अनेक शक्ति प्रचितपना होने से जीव के अनेकात्मकत्व की सिद्धि—अनेक धर्मात्मकता का दूसरा हेतु यह है कि वह अनेक शक्तियों का आधारभूत है, अनन्त शक्तियाँ वहां पायी जाती हैं इस कारण जीव अनेकात्मक है। जैसे घी के सम्बन्ध में कितनी बातें समझ में आती हैं ? यह तृप्ति करने वाला है, यह पुष्ट करने वाला है, ऐसी उसमें अनेक शक्तियां विदित होती हैं। इसी तरह द्रव्य क्षेत्र काल भाव के निमित्त से यह जीव भी अनेक प्रकार की वैमानिक पर्याय शक्तियों को धारण करता है। तात्पर्य यह है कि जिस जीव के बारे में इन अध्यायों में वर्णन किया गया है वह जीव वास्तविक सद्-भूत पदार्थ है। और, वह एक होकर भी अनेकात्मक है।

अनेक सम्बन्धिरूपता व अनेकोत्कर्षापकर्ष परिणत गुण सम्बन्धिरूपता होने से जीव के अनेकात्मकत्व की सिद्धि—अन्य आपेक्षिक द्रव्यों से भी अनेकात्मकता पदार्थ में विदित होती है। जैसे एक ही घड़ा है, तो वह अन्य सम्बधित या अगल-बगल स्थित पदार्थों की अपेक्षा पूर्व, पश्चिम आदिक भेद हो जाते हैं। यह घड़ा है, पूर्व में रखा है, यह घड़ा पश्चिम में रखा हैं, तो किसी अन्य चीज की अपेक्षा से इस प्रकार विदित होता है, यह दूर है, यह पास है, यह पुष्ट है, यह नया पुराना है, यह इतना बड़ा है आदिक अनेक व्यवहार उसमें पाये जाते हैं, तो अनेक वचन व्यवहार का विषयभूत होने से वह घड़ा अनेक धर्मात्मक है, ऐसे ही यह आत्मा भी अनेक सम्बन्धियों की अपेक्षा उन-उन अनेक तथ्यों वाला विदित होता है। जैसे इन अंगुलियों में ही कोई एक अंगुली किसी की अपेक्षा छोटी है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किसी की अपेक्षा बड़ी है तो वहां जैसे अनन्त धर्म आपेक्षित विदित होते हैं, तो यह परिचय सत्ता को सिद्ध करता है कि जीव वास्तविक सत् है। कर्म नोकर्म के सम्बन्ध से इस जीव के विषय में जीव स्थान गुण स्थान आदिक अनेक भेद हो जाते हैं, जैसे दण्डा के सम्बन्ध से दण्डी मनुष्य, कुण्डल के सम्बन्ध से कुण्डली मनुष्य। तो यह अनेकात्मकता सत्त्व को सिद्ध करती है कि यह जीव भावात्मक पदार्थ है। किञ्च जैसे किसी सहयोगी गुण की अपेक्षा घड़े में अनेक बातें विदित होती हैं, यह घड़ा इतना है अथवा इसके पीलेपन में यह कम पीला, यह अधिक पीला इस तरह विदित होता है, ऐसे ही जीव में भी क्रोध, मान आदिक जो उत्पन्न होते हैं उनकी डिग्रियों के भेद से इसमें भी अनेक प्रकार की विशेषतायें व्यवहृत होती हैं। तो अपेक्षाकृत, शक्तिकृत, पर्यायकृत जो अनेकात्मकतायें हैं, वे सब जीव को भावात्मक सिद्ध करती हैं। जीव की अनेकात्मकता सिद्ध करने के प्रकरण में अनेक दृष्टियों से अनन्त धर्म बताये जा रहे हैं।

अतीतानागतवर्तमानकाल सम्बन्धित होने से जीव की अनेक धर्मात्मकता की सिद्धि—और भी देखिये—जैसे कोई मिट्टी आदिक पदार्थ प्रध्वंस रूप है, अतीत है, सम्भावना रूप है, निरन्तर क्रिया चल रही है ऐसा वर्तमान काल रूप है, ऐसे इन अनेक कालों में अनेक पर्यायों रूप विदित होता है, ऐसे ही यह जीव अनादि काल से है, यह भी तो विदित होता है, अनन्त काल तक रहेगा। यह अनन्त अतीतों में गुजर चुका है, यह ऐसी पर्यायों को पायेगा। उसकी वर्तमान अर्थ-पर्याय, वर्तमान व्यंजन पर्याय इन सभी को निरखकर यहाँ अनेक रूपता विदित होती है। और, है भी यों नाना रूप। जैसे कि यदि यह कह दिया जाये कि जीव तो वर्तमान मात्र है, तो इसके मायने हैं कि न अतीत है न भविष्य है, पूर्व और उत्तर की रेखा रही ही नहीं। तो जहाँ पूर्व और उत्तर की रेखा नहीं है वहाँ वर्तमान काल भी कैसे टिक सकेगा ? तो यह सब काल अपेक्षा तथ्य भी जीव के विदित होता है, अत: जीव अनेकात्मक है और इसी कारण भावात्मक है।

अनन्त काल और एक काल में अनन्त उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्तता होने से जीव पदार्थ की अनेकात्मकता व भावात्मकता की सिद्धि—जीव पदार्थ का चतुर्थ अध्याय तक वर्णन हुआ। उसमें यह जिज्ञासा हुई थी कि जीव नामक पदार्थ ही तो सिद्ध कर लें कि वह है भी कुछ। तब तो उसके बारे में आवास स्थिति परिणति भाव आदिक सब बातें बताना उपयुक्त है। तो उसी जिज्ञासा के समाधान में यह प्रकरण चल रहा है कि जीव भावस्वरूप है और इसी कारण वह अनेक धर्मात्मक है। जीव की अनेक धर्मरूपता सिद्ध की जा रही है जिसमें कुछ हेतु तो बताये गये थे, अब यहां एक हेतु और ध्यान में लीजिये चूंकि यह जीव अनन्त काल और एक काल में अनन्त प्रकार के उत्पाद व्यय ध्रौव्य से युक्त है अत: आत्मा अनेक धर्मरूप है। इसे एक दृष्टान्त से समझिये। जैसे घड़ा एक काल में द्रव्यदृष्टि से देखने पर वह पार्थिव रूप में उत्पन्न होता है, जल रूप में नहीं, क्षेत्र दृष्टि से यहाँ उत्पन्न होता है बम्बई आदिक जगह में नहीं। काल दृष्टि से वर्तमान काल में उत्पन्न होता है अतीत भविष्य काल में नहीं। भाव दृष्टि से मानो बड़ा उत्पन्न होता है तो छोटा नहीं। इस घटका यह उत्पाद अन्य सजातीय घटों से, उन घटों के उत्पादों से भिन्न है। साथ ही अन्य विजातीय घटों से जो अन्य-अन्य शक्लों में हैं, पीतल आदिक अनेक द्रव्यों में हैं उनके उत्पादों से भी भिन्न है। यह उत्पाद पूर्ण विजातीय कपड़े आदिक पदार्थों के अनन्त उत्पादों से भी भिन्न है तथा अत्यन्त भिन्न प्रकार के जीव, धर्म, अधर्म आदिक के उत्पादों से भी भिन्न है। तब देखिये—यहाँ अनन्त उत्पाद

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दृष्टि में आ गए। अब यह तो एक सामान्य रूप से देखा, अब उसी समय उस उत्पाद को देखिये, तो उत्पन्न न होने वाले द्रव्यों की ऊपर-नीचो, तिरछी, लम्बी-चौड़ी आदिक अवस्थाओं से भिन्न है सो वह उत्पाद भी अनेक प्रकार का सिद्ध हुआ। इस घटका उत्पाद, वह उत्पाद अनेक अवयव वाले मिट्टी के स्कंध से उत्पन्न हुआ है इस कारण अनेक प्रकार का है। अन्य प्रकार से भी देखिये तो वह उत्पाद जल धारण, जल खींचना, दूसरों का हर्ष कारण होना, किसी को भय शोक का कारण होना आदिक अनेक अर्थ क्रियाओं में निमित्त है, इस दृष्टि से भी यह उत्पाद अनेक तरह का है, और जैसे ये उत्पाद अनेक तरह के विदित हो रहे हैं तो उसी समय उतने ही उसके प्रतिपक्ष भूत व्यय हो रहे हैं। जब पूर्व पर्याय का विनाश नहीं तब नूतन पर्याय की उत्पत्ति की सम्भावना नहीं। तब ही तो उत्पाद और विनाश ये प्रतिपक्षभूत हैं, और इन दोनों का प्रतिपक्षभूत है ध्रौव्य याने उसकी स्थिति। सो इस ही कारण अर्थात् उत्पाद और विनाश के प्रतिपक्षभूत होने से यह स्थिति भी उतनी ही प्रकार की है, क्योंकि जो स्थिति नहीं उसका उत्पाद और व्यय नहीं हो सकता।

उत्पद्यमानता उत्पन्नता व विनाश इन तीन अवस्थाओं से युक्तता होने से जीव पदार्थ की अनेकात्मकता व भावात्मकता की सिद्धि—अब साधारणतया देखें तो पदार्थ में ये तीन अवस्थायें माननी पड़ती हैं—उत्पद्यमानता, उत्पन्नता और विनाश, क्योंकि जब यह प्रयोग हो रहा कि घट उत्पन्न होता है तो बतलाओ इस प्रयोग को क्या आप भले प्रकार वर्तमान कह सकते कि घट उत्पन्न होता है? इस प्रयोग को वर्तमान नहीं कह सकते, क्योंकि उत्पन्न होता है, इस प्रयोग में यह ध्वनित होता है कि अभी तक घड़ा उत्पन्न नहीं हुआ। उत्पन्न हो रहे को उत्पन्न हुआ है यह नहीं कहा जाता और उत्पत्ति के बाद तुरन्त विनाश मान लिया जाए तो स्थिति का प्रतिपादक कोई शब्द ही प्रयोग में न होगा। सो तीन अवस्थायें माने बिना उत्पाद में भी अभाव, विनाश में भी अभाव होगा और इस तरह पदार्थ का अभाव ही होने से व्यवहार का भी लोप हो जायेगा। तो यों पदार्थ में उत्पद्यमानता, उत्पन्नता और विनाश ये तीन अवस्थायें माननी होती हैं। तो इस तरह यह सब बात जैसे घट के उदाहरण में बतायी गई है ऐसे ही जीव पदार्थ में भी समझना। एक जीव में भी द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिकनय के विषयभूत अनन्त शक्तियाँ उत्पत्ति विनाश और स्थिति रूप होने से अनेकात्मकता से पूर्ण है ऐसा समझना चाहिये। इससे सिद्ध होता है कि जीव भावस्वरूप है और अनेकात्मक है।

अन्वय व्यतिरेकात्मकता होने से जीव पदार्थ की अनेकान्तरूपता व भावस्वरूपता की सिद्धि—अब जीव की अनेकात्मकता समझने के लिये एक यह भी हेतु देखिये कि जीव चूंकि अन्वय व्यतिरेक रूप है, इस कारण अनेक धर्मात्मक है। अनुगताकार विधि से तो अन्वय समझा जाता है और व्यावृत्ताकार विधि से व्यतिरेक समझा जाता है। जैसे एक घड़े के उदाहरण से समझें, एक ही घड़ा सत् है, अचेतन है आदिक के ये सामान्य रूप से अन्वय धर्म है उसमें और वही घड़ा नया है, पुराना है आदिक सो विशेष रूप से इस व्यतिरेक धर्मों का आधारभूत है वह घट। ऐसे ही इस आत्मा के विषय में समझना कि यह आत्मा आत्मत्व, ज्ञातृत्व, द्रष्टत्व, कर्तापन, भोक्तापन, अमूर्तपना आदिक अन्वय धर्म से सहित है क्योंकि इन धर्मों से अनुगताकार विधि बनती है। वही-वही है, ऐसी विधि को अनुगताकार कहते हैं, और यही आत्म उत्पाद, स्थिति, विपरिणमन, वृद्धि, ह्रास, विनाश, गति, इन्द्रिय, काय, योग, ज्ञान-दर्शन, संयम-दर्शन, लेश्या, सम्यक्त्वादिक अनेक व्यतिरेक धर्म से

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पूरित हैं। तो यों अन्वय व्यतिरेक रूप होने से यह आत्मा अनेक धर्मात्मक है। जो अनेक धर्मात्मक है वह भाव रूप है याने वास्तव में सद्भूत है, उसी जीव के बारे में चार अध्यायों तक संक्षेप में परिचय दिया गया है।

सकलादेश व विकलादेश से समझ व अभिधान होने से जीव पदार्थों की अनेक धर्मात्मकता व भावात्मकता की सिद्धि—अब अनेकात्मक जीव का परिचय ज्ञान के उपाय से समझिये। इस अनेकात्मक जीव का कथन दो रूप में होता है। (१) क्रमिक रूप और, (२) यौगपद्य रूप। कथन का और कोई तीसरा प्रकार नहीं है, सो जब आत्मा के अस्तित्व आदिक अनेक धर्म काल आदिक की अपेक्षा भिन्न-भिन्न रूप से विवक्षित होते हैं उस समय जिन शब्दों से कहा गया, उन शब्दों में चूंकि अनेक अर्थ के प्रतिपादन की शक्ति नहीं है, इस कारण क्रम से प्रतिपादन होता है और शब्द द्वारा क्रमिक प्रतिपादन को विकलादेश कहते हैं। विकलादेश नयों में हुआ करता है, परन्तु जब उन्हीं अस्तित्वादिक धर्मों को अभेद रूप से कहने-समझने की विवक्षा होती है उस समय यद्यपि बोला गया तो एक ही शब्द और उस शब्द का वाच्य हुआ कोई एक धर्म, किन्तु अभेद-विवक्षा होने से एक धर्म के कथन द्वारा ही सभी धर्मों का युगपत् कथन हो जाता है, क्योंकि वहाँ अभेद विवक्षा है। तो उस धर्म से उन अनेक धर्मों का बोध हो गया जो कि सभी तादात्म्य रूप से एकत्व को प्राप्त है सो वहाँ सर्व का कथन हो गया। इस प्रकार यह सकलादेश कहलाता है। सकलादेश होता है प्रमाण रूप। तात्पर्य यह है कि वस्तु में इन अनेक धर्मों का प्रतिपादन और परिचय नयदृष्टि से भी चलता है और प्रमाणदृष्टि से भी चलता है।

सकलादेश में सप्तभङ्गी होने का निर्देश—अब सकलादेश में स्याद्वाद किस प्रकार होता है और उसमें प्रत्येक धर्म की अपेक्षा कैसे सप्तभङ्गी होती है यह सब बात बतायेंगे। पर उन सबको समझते समय यह ध्यान से न भूलना कि इन सब कथनों में एक गुण रूप में सम्पूर्ण वस्तु धर्मों का अखण्ड भाव से ग्रहण किया गया है, क्योंकि अन्य नहीं कहा गया धर्म, इस धर्म के साथ ही रहते हैं अन्यथा जिस धर्म का प्रयोग किया गया है वह भी न रह सकेगा। इस तरह से सम्पूर्ण वस्तु का परिचय होता है। इसी को अभेद वृत्ति कहते हैं जिसमें कि एक ही शब्द से अभेदोपचार करके पूर्ण वस्तु का प्रतिपादन होता है। मोटे रूप से यह जानें कि द्रव्यार्थिकनय से तो धर्मों में अभेद है और पर्यायार्थिकनय की विवक्षा में भेद होने पर भी जहाँ समग्र वस्तु का परिचय किया जा रहा है वहां उन सबका अभेदोपचार कर लिया जाता है। तो इस तरह एक-एक धर्म के प्रतिपादन के समय प्रमाण दृष्टि में अन्य समस्त धर्मों का एक साथ कथन हो जाया करता है, इस तरह एक-एक धर्म के परिचय के कथन में ७-७ भङ्ग हो जाया करते हैं।

प्रमाण सप्तभङ्गी के भंग में विशेष्य विशेषण व अवधारण का प्रकाश—प्रमाण सप्तभङ्गी के भङ्ग इस प्रकार हैं—(१) स्यात् अस्तिएव जीवः, (२) स्यात् नास्तिएव जीवः, (३) स्यात् अवक्तव्य एव जीवः, (४) स्यात् अस्ति नास्ति च जीवः, (५) स्यात् अस्ति अवक्तव्यः जीवः, (६) स्यात् नास्ति अवक्तव्यः जीवः, (७) स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्यः जीवः। इसका अर्थ इस प्रकार है कि—(१) एक अपेक्षा से है ही है जीव, (२) एक अपेक्षा से नहीं ही है जीव, (३) एक अपेक्षा से अवक्तव्य ही है जीव, (४) एक अपेक्षा से है और नहीं है जीव, (५) एक अपेक्षा से है और अवक्तव्य है जीव, (६) एक अपेक्षा से नहीं है और अवक्तव्य है जीव, (७) एक अपेक्षा से है और नहीं तथा अवक्तव्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है जीव। पहले भङ्ग में जीव शब्द तो विशेष्य है और द्रव्यवाची है तथा अस्ति शब्द विशेषण है याने एक अस्तित्व गुण बताता है और इन दोनों का साथ करने में अर्थ हुआ कि जीव है। ये दोनों आपस में विशेषण, विशेष्य हो गये। जीव कैसा है? अस्तित्व गुणमय है। इस विशेषण विशेष्य भाव को प्रकट करने के लिये एव शब्द कहा है ताकि इन शब्दों द्वारा उसका निश्चय हो जाये और अन्य धर्मों की निवृत्ति हो जाये। विशेषण, विशेष्य में ऐसा ही अवधारण होता है। जैसे कोई फूल लाल है, वहां यह कहता कि यह फूल लालहै, इसमें निश्चय बसा है कि यह फूल लाल ही है, अन्य रंग वाला नहीं। जैसे कोई कहे कि कौवा काला है उसका अर्थ हो यह है कि कौवा काला ही है, अन्य रंग वाला नहीं। तो विशेषण, विशेष्य भाव का जहाँ प्रयोग होता है वहाँ अवधारण बनता है। चाहे कोई एव या ही शब्द कहकर जताये अथवा न जताये, अवधारण करना बहुत जरूरी था।

प्रमाण सप्तभंगी के भंगों में स्यात् शब्द की अनेकान्तद्योतकता—सप्तभंगी के भंग में अवधारण से शब्द द्वारा जो एक धर्म कहा गया वह ग्रहण में आया, अन्य धर्म ग्रहण में न आया लेकिन अन्य धर्म भी इसके साथ हैं। यदि अन्य धर्म इसके साथ न हों तो ये प्रस्फुट धर्म भी न रह सकेंगे। इस बात को सिद्ध करने के लिए इस भंग में स्यात् शब्द का प्रयोग किया गया है। तब भंग बना स्यात् अस्तिएव जीवः यह स्यात् शब्द तिङन्त का शब्द है। यह क्रियावाचक शब्द नहीं है। स्यात् शब्द अस् धातु के लिङ् लकार में बनता है, परन्तु वह शब्द नहीं है यहां यह तो अपेक्षा सूचक शब्द है। इस स्यात् शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं। जैसे—अनेकान्त, विधि, उपचार, आश्रय आदिक परन्तु विवक्षावश यहां अनेकान्त अर्थ लिया गया है।

स्यात् शब्द से अनेकान्त का द्योतन होने पर—अब यहां एक जिज्ञासा हो सकती कि स्यात् शब्द ही जब अनेकान्त का द्योतक है तो स्यात् शब्द से ही पूरी वस्तु ज्ञान में आ गई फिर आगे किसी धर्म को कहने की जरूरत क्या है? तो उत्तर यह है कि यद्यपि स्यात् शब्द से सामान्यतया अनेकान्त का द्योतन हो जाता है फिर भी विशेष जिज्ञासा में रहता ही है तब वहाँ विशेष शब्दों का प्रयोग करना होता है। जैसे वृक्ष शब्द कह दिया तो सभी का ग्रहण हो गया, मगर जो जिस वृक्ष का इच्छुक है या उन्हें समझना आवश्यक है वहां उसका प्रयोग तो करना ही पड़ता है। जैसे—नीम वृक्ष, आम वृक्ष ऐसे ही यहां स्यात् शब्द का प्रयोग करने पर अनेकान्त की सूचना हो गई, फिर भी कुछ समझे बिना तो तीर्थ नहीं चलता, इसीलिये प्रथम भङ्ग में अस्तिएव जीवः यह भी प्रयोग करना पड़ा है।

प्रमाण सप्त भंगी में भी शब्द प्रयोग की अपेक्षा द्रव्यार्थिक पर्यार्थिक की प्रधानता व अप्रधानता में अन्य भंगों की उपयोगिता—अब यहाँ एक जिज्ञासा होती है कि प्रमाण सप्तभङ्गी में प्रथम भङ्ग बताया है स्यात् अस्तिएव जीवः और यह वाक्य सकलादेशी है तो इस ही वाक्य से जीव द्रव्य के समस्त धर्मो का संग्रह हो ही गया है फिर आगे के भङ्ग क्यों कहे जाते हैं? तो समाधान यह है कि भले ही सकलादेश का आशय होने से समग्र वस्तु का बोध हो गया फिर भी शब्दों का जहाँ प्रयोग होता है वहाँ मुख्य और गौण प्रकरण हो ही जाता है। तो इसी मुख्य और गौण को विवक्षा में सभी भङ्ग आवश्यक हो जाते हैं। जैसे द्रव्यार्थिक की प्रधानता में और पर्यायार्थिक की गौणता होने पर प्रथम भङ्ग का प्रयोग सही हो जाता है और जब पर्यायार्थिक की प्रधानता हो और द्रव्यार्थिक की गौणता हो वहां द्वितीय भङ्ग स्पष्ट होता है। यहां जो प्रधानता और गौणता बतायो जा रही है सो सिर्फ शब्द प्रयोग की ही है, क्योंकि सकलादेश के अभिप्राय में अर्थात् प्रमाण सप्तभङ्गी के

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किसी भी भङ्ग में पूर्ण वस्तु ही ग्रहण हो जाती है, परन्तु जो शब्द से कहा गया वह तो है प्रधान और जो शब्द से नहीं कहा गया वह है यहाँ अप्रधान। इसी तरह तीसरे भङ्ग में द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक की एक साथ विवक्षा है और युगपद विवक्षा होने पर दोनों ही प्रधान हो जाते हैं सो चूंकि इन दोनों धर्मों को प्रधान रूप से कहने वाला कोई शब्द नहीं है, इसीलिये यह तृतीय भङ्ग अवक्तव्य कहलाता है। चतुर्थ भङ्ग में द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों ही क्रम से प्रधान किये गये हैं। इसीलिए यह चतुर्थ भंग उभय प्रधानी है, ऐसे ही आगे के तीन भंग क्रम योगपद्य प्रधानता, अप्रधानता के आशय से बन जाते हैं।

स्यात् शब्द के प्रयोग से एकान्तवाद का परिहार—यहाँ किसी भी भंग में एकान्त नहीं है क्योंकि स्यात शब्द सर्व भंगों में पाया जाता है, यदि स्यात् शब्द हटाकर एकान्तवाद का प्रयोग करे—जैसे पहले भंग को कहा कि अस्तिएव जीवः अथवा उलट दो, जीव एव अस्ति तो उससे यह निश्चय बनेगा कि जीव ही है, अजीव आदिक कुछ नहीं है। तो कुछ जगत में हैं वे सब जीव हैं, किन्तु ऐसा तो है नहीं। जीव भी एक पदार्थ है, परमाणु भी एक पदार्थ है। तो एकान्तवाद के प्रयोग से सर्व कुछ सत् एक ब्रह्ममात्र, जीवमात्र रह गया, जो कि अन्य वस्तुओं का लोप करने वाला है। सो अस्तिएव जीवः यहाँ अस्ति के साथ एव शब्द लगाया है। है ही जीव, ऐसा कहने से कि कोई अगर एकान्त करे और स्यात् शब्द का प्रयोग हटा दे तो पुद्गल आदिक के अस्तित्व से भी जीव का अस्तित्व एक हो जायेगा। याने जीव पुद्गल एक बन जायेगा—अस्तिएव ऐसा कहने से। इसी कारण भंग का प्रयोग बड़ी सम्हाल के साथ किया गया है।

प्रत्येक भंग में स्यात् के साथ एव शब्द के प्रयोग का महत्त्व—अब यहाँ स्यात् शब्द किस विवक्षा को प्रकट करता है सो ध्यान में लीजिये। जो अस्ति है वह अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है। किसी अपेक्षा से है ही जीव। इस भंग का अर्थ है कि अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से अस्तित्त्व है जीव में, परन्तु अन्य अपेक्षा से अस्तित्व नहीं है, याने अन्य द्रव्य, क्षत्र, काल, भाव से अन्य पदार्थों के रूप से अस्तित्त्व नहीं है। ऐसा अर्थ जब पहले मन में विविक्षित है तो दूसरे भंग में भी यही बात आयी, पर प्रधान और अप्रधान का अन्तर रहा। दूसरे भंग में बताया है कि एक अपेक्षा से नहीं है जीव अर्थात अन्य पदार्थों के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के रूप से नहीं है जीव। यहाँ पर्यायार्थिक की प्रधानता रही, द्रव्यार्थिक की गौणता रही लेकिन ग्रहण सबका हो गया। सिर्फ प्रस्तुत और अप्रस्तुत का अन्तर है। इसी में यह सिद्ध हुआ कि जीव अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है, पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं है। अब इन दो बातों में से कोई किसको मना करेगा। यदि कोई यह कह बैठे कि हम दूसरा भंग नहीं मानते, याने परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं है, यह बात नहीं तो इसका फल यह होगा कि पर रूप से भी है बन गया, फिर पदार्थ ही कहाँ रहा? कोई कहे कि हम बहुत भंग नहीं मानते तो उसका अर्थ यह रहा कि जीव अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं है। फिर रहा ही कहाँ पदार्थ। इस कारण अपेक्षा के साथ धर्म का अवधारण करना यह निश्चय भी बताता है और अनेकान्त का भी प्रकाश करता है।

घट के उदाहरण से प्रथम व द्वितीय भंग की वस्त्वधिगम में उपयोगिता व अनिवार्यता का कथन—यहाँ सकलादेश विषयक सप्तभंगी में प्रथम और द्वितीय भंग का अर्थ स्पष्ट किया जा रहा है, जिसमें यह बात दिखाई जा रही है कि जो है वह अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है, अन्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं, क्योंकि वह अन्य द्रव्यादिक अप्रस्तुत है। इस विषय को एक और दृष्टान्त से समझिये। जैसे घड़ा है तो उसे यों बताया जायेगा कि घड़ा इस पृथ्वी रूप से है, इस क्षेत्र में है, इस काल से है और इस भाव से है, अन्य से नहीं है। यदि यह नियम न माना जायेगा तो वह फिर घड़ा ही नहीं हो सकता। इसमें प्रथम पक्ष तो है सामान्य सत्त्व, द्वितीय पक्ष में और विशेषतया अवधारण है। यदि वह अपने नियत+द्रव्यादिक रूप से होने के कारण घड़ा नहीं रह सकता तथा अन्य द्रव्यादिक से नास्तित्त्व नहीं है तो वह महासामान्य बन जायेगा। फिर घड़ा न रहा। उसका स्पष्टीकरण यह है कि यदि घड़ा इस मिट्टी रूपता की तरह जल आदिक रूप से भी हो जाये तो अब यह जल आदिक रूप भी हो गया, तो सामान्य द्रव्य बन जायेगा। घड़ा न रहा क्योंकि ऐसा होना सब द्रव्यों में पाया जा रहा है। इसी तरह यदि यह घड़ा इस क्षेत्र से होने की तरह अन्य समस्त क्षेत्रों से भी अस्ति हो जाये तो वह घड़ा न रह पायेगा, किन्तु आकाश जैसा बन जायेगा, क्योंकि वह अन्य सब क्षेत्रों से भी हो गया। इसी प्रकार जैसे यह घड़ा इस काल की अपेक्षा है ऐसे ही अतीत अनागत काल से भी अस्ति हो जाये तो अब यह घड़ा न रहा, क्योंकि यह अस्तित्व त्रिकाल अनुयायी हो गया, यों मिट्टी द्रव्य ही बन गया। इस जैसा वह सर्व काल की पर्यायों में है फिर तो जैसे हम इस देश काल रूप से इस घड़े को देखते हैं और उस घड़े से काम निकालते हैं इसी तरह सब काल सब देश में भी देखा जाना चाहिए और सब देश सब काल में उससे काम होते रहना चाहिये। इसी प्रकार जैसे यह घड़ा इस नई पर्याय रूप से है ऐसे ही वह पुरानी आदिक सभी पर्यायों रूप से हो जाये, सभी संस्थान आदिक रूप से हो जाये तो वह घड़ा न रहेगा क्योंकि वह सर्वव्यापी बन गया। महासामान्य हो जायेगा। तो जैसे एक घड़े में अपने नियत द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से अस्तित्व है और अन्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नास्तित्त्व इसी तरह प्रकृत में भी जानना।

इस जीव को मानो जो मनुष्य पर्याय रूप से जो विवक्षित हैं उसको अस्तित्व युक्त कहा जा रहा हो कि यह जीव अपने इस द्रव्य से है। इस क्षेत्र से है, इस काल से है और इन रूपों से है, ऐसे ही ये अन्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से भी हो जायें तो फिर यह मनुष्य न रहा, क्योंकि अपने नियत, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से न रहा। तो जैसे गधे के सींग कुछ नहीं वैसे ही मनुष्य भी कुछ न रहा। साथ ही जब अन्य द्रव्यादिक रूप से मान लिया तब वह सामान्य रहा, मनुष्य न रहा। जैसे—यहाँ सामान्य सभी में पाया जाता है तो यह ही सब रूप हो गया। जैसे कि यह जीव द्रव्य रूप से है ऐसे ही पुद्गल आदिक रूप से भी हो गया, फिर यह मनुष्य कहाँ रहा, क्योंकि पुद्गल आदिक से भी अस्तित्व देखा गया। तो जो अस्तित्व सब द्रव्यों में विवक्षित है वह महासामान्य ही कहलाया अथवा केवल द्रव्य रूप ही रहा। इसी तरह जैसे यह जीव इस क्षेत्र में रहने रूप से है इसी तरह अन्य अनियत क्षेत्र रूप से भी हो जाये तो यह मनुष्य ही न रहा यह तो अनियत सर्व देशों रूप हो गया आकाश की तरह। उसी प्रकार जैसे यह वर्तमान काल रूप से है, जैसे कि इस मनुष्य रूप में विवक्षित है इसी तरह यदि अतीत नारकादिक पर्याय और अनागत देव आदिक पर्याय के काल रूप से भी हो जाये तो यह मनुष्य न रहा, क्योंकि अब तो यह सर्व कालों से सम्बन्धी हो गया जीवत्व की तरह। फिर तो जैसे हमको इस देश काल विशेष सम्बन्धित रूप से प्रत्यक्ष हो रहा है उसी प्रकार अतीत अनागत काल देश के सम्बन्धी रूप से भी प्रत्यक्ष हो जाना चाहिये। इससे यह सिद्ध हुआ कि यह स्यात् अस्तिएव और स्यात् नास्तिएव अतीव अनिवार्य व उपयोगी भंग हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भाव में अभावनिरपेक्षता का अभाव व अभाव में भावनिरपेक्षता का अभाव—ये प्रथम और द्वितीय भंग इस प्रकार भी सिद्ध हुये हैं कि अपनी सत्ता के भाव से तो है और परसत्ता के भाव से नहीं है, यदि परसत्ता के रूप से भी हो जाये तो यह जीव अपने स्वरूप से न रहा, फिर यह जीव ही न रहा। यह तो सत्ता मात्र हो गया। तो यहाँ यह बात समझना कि अपनी सत्ता और परकी असत्ता के आधीन इस जीव का स्वरूप हुआ है। तो यह उभय रूप रहा अब, क्योंकि इस उभयरूपता को लांघकर किसी एक ही रूप बनेगा तो वह यह जीव न रहा, किन्तु सन्मात्र हो जायेगा, इसी प्रकार परसत्ता के अभाव की अपेक्षा होने पर भी स्वसत्ता का सद्भाव न हो तो वह वस्तु ही न हो सकेगी। फिर जीव या घड़ा कुछ भी सिद्ध करने की बात दूर ही रही, अतः यह मानना पड़ेगा, पर का अभाव भी स्वसत्ता के सद्भाव से ही वस्तु का स्वरूप बन पाता है, जैसे अस्तित्व धर्म अस्तित्त्व रूप से है, नस्तित्त्व रूप से नहीं है, तो लो यह भी उभयात्मक हो गया, अन्यथा वस्तु का अभाव हो जायेगा। तात्पर्य यह है कि भाव तो अभाव निरपेक्ष नहीं होता, और अभाव भाव निरपेक्ष नहीं होता। सर्वथा भाव रूप मान लिया जाए तो वहाँ कोई आवान्तर सत् वस्तु नहीं रहती। सर्वथा अभावरूप माना जाए तो कुछ है ही नहीं।

अस्तिशब्दवाच्य में और जीव शब्द वाच्य में भिन्नस्वभावता या अभिन्नस्वभावता की जिज्ञासा का एक विकट प्रश्न—यहाँ एक जिज्ञासा होती है कि जैसे कहा—अस्तिएव जीवः तो इसमें अस्ति शब्द का वाच्य अर्थ तो कुछ है ही, जिसे अस्तित्त्व कहा, है पना कहा, और जीव शब्द का वाच्य अर्थ भी कुछ है, जिसे एक ज्ञानात्मक पदार्थ कहो। तो इन दो शब्दों के जो वाच्य अर्थ हैं, अस्ति शब्द का वाच्य अर्थ और जीव शब्द का वाच्य अर्थ ये दोनों भिन्न स्वभाव वाले हैं या अभिन्न स्वभाव वाले हैं। यदि इन दोनों का वाच्य अर्थ अभिन्न-स्वभाव है तो उसका अर्थ यह हुआ कि जो सत् है वही जीव है, उसमें अब अन्य धर्म न रहे, तब फिर जीव है वह, यों विशेषण, विशेष्य भाव भी न बन सकेगा, अथवा दोनों शब्दों का प्रयोग भी न हो सकेगा। क्योंकि जब ये सत् और जीव अभिन्न स्वभावी ही गये अर्थात् एक ही हो गये तो जैसे सत्त्व सर्व द्रव्य और पर्यायों में व्याप्त है इसी तरह उस सत्त्व से अभिन्न जीव भी सर्व द्रव्य और सर्व पर्यायों में व्याप्त होगा। चाहे यों कहो कि सर्व सत् स्वरूप हैं, चाहे यों कहो कि सर्व जीव स्वरूप हैं। अब इस अभिन्न स्वभाव के पक्ष में जीवमें सामान्य सत् स्वभाव हो जाने से जीव के विशेष स्वभाव चैतन्य ज्ञानादिक नरनारकादिक पर्याय आदिक सबका अभाव हो जायेगा। अथवा जब अस्तित्त्व जीव का स्वभाव सर्वथा अभिन्न बन गया तो पुद्गलादिक में अस्तित्त्व का ज्ञान न हो सकेगा, इस कारण अस्ति शब्द का वाच्य अर्थ और जीव शब्द का वाच्य अर्थ अभिन्न स्वभाव वाला है; यह तो सिद्ध कर नहीं सकते। यदि कहो कि दोनों वाच्य अर्थ भिन्न-भिन्न हैं तो जीव अलग रहा, सत् अलग रहा, मायने जीव असत् हो गया। इसे अनुमान प्रयोग में यों कहा जा सकेगा कि जीव असद्रूप है क्योंकि यह अस्ति शब्द के वाच्य अर्थ से भिन्न है। जैसे अस्ति शब्द के वाच्य अर्थ से भिन्न आकाश पुष्प है, खरविषाण है तो वह असत् ही तो है, तो जीव भी असत् हो जायेगा, और जब जीव ही असत् हो गया तो बध मोक्ष के सब व्यवहार नष्ट हो गये। और, जैसे इस प्रस्तुत भंग में अस्तित्त्व जीव से भिन्न है ऐसे हो पुद्गल आदिक से भी भिन्न होगा अस्तित्त्व। तो न सत् रहा न पदार्थ। तो अस्तित्व से जीव भिन्न है यह भी नहीं बताया जा सकता और भिन्न अभिन्न दो विकल्पों को छोड़कर और कहा ही क्या जाएगा ?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अस्ति शब्द वाच्य में व जीव शब्द वाच्य में कथंचित् भिन्न स्वभावता व कथंचित् अभिन्न स्वभावता का समाधान—अब इसका समाधान करते हैं कि अस्ति शब्द के वाच्य अर्थ से जीव शब्द का वाच्य अर्थ कथंचित् भिन्न रूप है और कथंचित् अभिन्न रूप है। जब पर्यायार्थिकनय से देखते हैं तो भवन और जीवन इन दो पर्यायों में भेद है। सो दोनों शब्द भिन्न अर्थवाची हैं। जब द्रव्यार्थिक दृष्टि से देखते हैं तो जीवन और भवन दोनों अभिन्न हैं, अलग-अलग नहीं पड़े हैं। इस कारण पदार्थ स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति रूप है। चतुर्थ अध्याय तक जीव तत्व का वर्णन किया गया गया है। उस वर्णन पर एक जिज्ञासा हुई थी कि जीव वास्तव में है भी या नहीं। यदि नहीं है तब तो उसके सम्बन्ध में अनेक बातें कहने का कुछ अर्थ नहीं और यदि है तब तो वर्णन करना युक्त है। तो इस जीव के अस्तित्व की सिद्धि में ही यह सब प्रकरण चल रहा है कि जीव भावात्मक है और अनेकात्मक है। उस ही सिलसिले में यहाँ सप्तभङ्गी के रूप से वर्णन चल रहा है।

अर्थ, अभिधान व प्रत्ययों की अस्तित्व, नास्तित्व रूप से प्रसिद्धि होने से भी जीव पदार्थ में भी स्याद स्त्येव स्यान्नास्त्येव की सिद्धि—प्रथम दो भङ्गों में यह प्रकरण है कि जीव अस्ति नास्ति रूप है। जीव ही क्या सभी पदार्थ अस्ति नास्ति रूप होते हैं। इसकी सिद्धि के लिये अनेक युक्तियां दी गई थीं। उसमें एक युक्ति यह भी है कि अर्थ अभिधान और प्रत्ययों की अस्ति और नास्ति यों उभय रूप से प्रसिद्धि है। उससे ही सिद्ध है कि पदार्थ अस्ति नास्ति रूप है। अर्थ मायने पदार्थ, अभिधान मायने शब्द और प्रत्यय मायने ज्ञान। जैसे जोवअर्थ, जीवशब्द और जीवविषयक ज्ञान ये तीनों बातें अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। लोक में वाच्य वाचक भाव भले प्रकार समझा जा रहा है और ज्ञेय ज्ञायक-भाव भी प्रसिद्ध है। कोई जाननहार है, कोई जानने में आ रहा है तो ये प्रचलित वाच्य वाचक भाव शब्द, अर्थ और ज्ञान के साधक हैं। इसी तरह ज्ञेय ज्ञायक भाव भी जीव पदार्थ के अस्तित्व के साधक हैं। यदि इन तीन को कुछ न माना जाये तो शून्यवाद का प्रसंग है। केवल शब्द माना जाये तो शब्दा-द्वैत का प्रसंग है। केवल ज्ञानमात्र ही माना जाये तो ज्ञानाद्वैतवाद का प्रसंग है, और केवल पदार्थ ही माना जाये तो यह सद् ब्रह्मवाद का प्रसंग है, पर इन अद्वैतों की सिद्धि किसी भी प्रकार नहीं हो सकती। आखिर कोई ज्ञाता तो मानना ही होगा। यही है जीव पदार्थ। और प्रत्येक पदार्थ अस्ति नास्ति रूप है। तो यहां भी प्रथम दो भङ्गों को अस्ति नास्ति रूप से कहा है, सो द्रव्यार्थिक की प्रधानता में पर्यायार्थिक अन्तर्भूत है। पर्यायार्थिक की प्रधानता में द्रव्यार्थिक अन्तर्भूत है। इस कारण दोनों ही भङ्ग सकलादेशी हैं।

अब तृतीय भङ्ग की बात देखिये—जब दोनों धर्मों के द्वारा एक अखण्ड अर्थ की अभेद रूप से युगपद विवक्षा होती है तो वह कहा नहीं जा सकता अतः अवक्तव्य है। जैसे द्रव्यार्थिक की प्रधानता में स्यात् अस्ति पर्यायार्थिक की प्रधानता में स्यात् नास्ति तथ्य दोनों ही हैं किन्तु जब दोनों को ही प्रधान करके विवक्षा बनाये कोई तो कहा नहीं जा सकता। वह अवक्तव्य है क्योंकि दोनों ही धर्मों का प्रधान रूप से वर्णन करने वाला कोई शब्द नहीं है। गुणों के युगपद भाव में तात्पर्य है काल आदिक की दृष्टि से अभेद वृत्ति बनाकर प्रतिपादन करना, सो ऐसा प्रतिपादक कोई शब्द नहीं होता है। वे काल आदिक ८ कौन से हैं जिनके अभेद परिचय से अवक्तव्य भङ्ग बनता है। वे हैं—(१) काल, (२) आत्म रूप, (३) अर्थ, (४) सम्बन्ध, (५) उपकार, (६) गुणिदेश, (७) संसर्ग और, (८) शब्द।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

काल आत्मरूप, अर्थ व सम्बन्ध की दृष्टि से सत्त्व असत्त्व में युगपद् अभेदवृत्ति न होने से अवक्तव्य भंग की समर्थितता—चूंकि गुण सभी परस्पर विरुद्ध हैं अर्थात् उनका वाच्य विरुद्ध है। यद्यपि अपेक्षा से तो एक वस्तु में उनका यह अवस्थान है इसलिये अविरुद्ध है, तथापि शाब्दिक दृष्टि से परस्पर विरुद्ध हैं, अतः उनकी एक काल में किसी एक वस्तु में वृत्ति नहीं हो सकती, यही कारण है कि सत्त्व और असत्त्व का वाचक कोई भी एक शब्द नहीं है। सत्त्व स्वरूप भावरूप है, असत्त्व का स्वरूप अभाव रूप है, वह सब एक शब्द के द्वारा युगपत् कैसे कहा जा सकता है ? परस्पर विरोधी सत्त्व और असत्त्व की एक अर्थ में वृत्ति भी नहीं हो पाती जिससे अभिन्न आधार मानकर अभेद और युगपद भाव कहा जा सकता। याने शब्द की मुख्यता में युगपद् भाव अवक्तव्य है। तो सत्त्व, असत्त्व के काल से भी अभेद वृत्ति नहीं, स्वरूप से भी अभेद वृत्ति नहीं और अर्थ से भी अभेद वृत्ति नहीं। यदि सम्बन्ध की दृष्टि से देखें तो भी गुणों में अभिन्नता की सम्भावना नहीं है, क्योंकि सम्बन्ध भिन्न होता है। जैसे दण्डो देवदत्त। तो दण्ड का और देवदत्त का सम्बन्ध बताया तो है, पर वे दोनों भिन्न हैं। क्षत्री यज्ञदत्त। यहाँ भी क्षत्र और यज्ञदत्त का सम्बन्ध बताया तो है, पर यहां भी दोनों भिन्न-भिन्न हैं। और साथ ही यह समझिये कि देवदत्त व दण्ड के सम्बन्ध से यज्ञदत्त व क्षत्र का सम्बन्ध भी जुदा है। जब कारणभूत सम्बन्धी भिन्न-भिन्न है तो कार्यभूत सम्वन्ध भी एक कैसे हो जायेगा। याने सत्त्व और असत्त्व का पदार्थ से अपना-अपना जुदा ही सम्बन्ध होगा। तो सम्बन्ध की दृष्टि से भी अभेद वृत्ति की सम्भावना नहीं है।

उपकार गुणिदेश संसर्ग और शब्द की दृष्टि में भी सत्त्व असत्त्व की युगपद् अभेद वृत्ति न होने से अवक्तव्य भंग की समर्थितता एवं स्याद् अवक्तव्य भंग का भी कथंचित्त्व—यहाँ अवक्तव्य भङ्ग की सिद्धि में यह बतला रहे हैं कि सत्त्व, असत्त्व की अभेद वृत्ति से प्रतिपादन करने वाला कोई शब्द नहीं है, इस कारण युगपद् भाव में यह अवक्तव्य है। उपकार दृष्टि से भी गुण अभेदवृत्ति में नहीं आता, क्योंकि द्रव्य में अपना-२ परिचय कराने रूप व्यवहार, यही हुआ उपकार। सो यह प्रत्येक गुण का जुदा-जुदा है। जैसे नील घट में नीलपने का प्रत्यय उत्पन्न होता है और पीत घट में पीत रंग का ज्ञान होगा तो प्रत्यय भी इनका जुदा-जुदा है। सत्त्व सत्ता का ज्ञान कराता और असत्त्व असत्ता का ज्ञान कराता। तो इस व्यहार रूप उपकार की दृष्टि से भी देखा जाये तो उनमें अभेदरूपता नहीं लायी जा सकती। गुणों के संसर्ग की बात भी सोचें तो जब सत्त्व और असत्त्व परस्पर भिन्न वाच्य के द्योतक हैं तब उनका संसृष्ट रूप एक नहीं हो सकता। तो एक शब्द से कैसे कथन बनेगा ? शब्द की बात तो एकदम स्पष्ट है कि कोई भी सत् दो गुणों को एक साथ नहीं कह सकता। इस प्रकार काल आदिक की दृष्टि से इसमें अभेद वृत्ति का वाचक कोई शब्द न होने से तीसरा भङ्ग अवक्तव्य है, यह भले प्रकार सिद्ध होता है। यहाँ एक बात और जानना चाहिये कि जीव अथवा पदार्थ सर्वथा अवक्तव्य नहीं है। वह स्यात् अवक्तव्य है, यदि सर्वथा अवक्तव्य होता तो अवक्तव्य शब्द को भी नहीं कहा जा सकता था। इस प्रकार तृतीय भङ्ग स्यात् अवक्तव्यः जीवः यह प्रसिद्ध होता है।

प्रमाण सप्तभंगी में चतुर्थ भंग का निर्देश—प्रमाण सप्तभंगी में यहां तक प्रथम, द्वितीय और तृतीय भंग की चर्चा हुई। अब चतुर्थ भंग की बात कह रहे हैं। प्रथम भंग में स्यात् अस्तिएव जीवः कहकर द्रव्यार्थिक की प्रधानता से जीव का जीव रूप से अस्तित्त्व बताया है। द्वितीय भङ्ग में

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्यात् नास्तिएव जीवः कहकर पर्यायार्थिक की प्रधानता में अन्य द्रव्यादिक की अपेक्षा नास्तित्व घोषित किया है। अब यहाँ दोनों धर्मों की क्रमशः मुख्य रूप से विवक्षा होने पर चौथा भंग स्यात् अस्तिनास्ति च बनता है। यहाँ भी समग्र वस्तु का ग्रहण होने से यह चौथा भंग भी सकलादेशी है। इस भंग को भी कथञ्चित् ही समझना चाहिये। यदि सर्वथा उभयात्मक हो जाय तो दोनों धर्मरूप सर्वथा हो जायेंगे तो इसमें परस्पर विरोध दोष आता है। सो कैसे हो सकता। तो उभय दोष का प्रसंग होने से यह भंग भी सर्वथा नहीं है।

सर्वसामान्य और तदभाव से, विशिष्टसामान्य और तदभाव से, स्यादास्ति नास्ति चतुर्थ भंग का निरूपण—अब इस चतुर्थ भंग की जितनी निरूपण दृष्टियाँ हैं उनमें से कुछ मुख्य निरूपण दृष्टियों से वर्णन करते हैं। पहली निरूपण दृष्टि सर्वसामान्य और तदभाव की अपेक्षा है। यहाँ यह जानना चाहिये कि अर्थ दो प्रकार का है (१) श्रुतिगम्य और (२) अर्थाधिगम्य। जो शब्द सुनने मात्र से बोधित हो उसे श्रुतिगम्य कहते हैं और जो अर्थ प्रकरण के अभिप्राय आदिक से जाने गये वाच्य हैं वे अर्थाधिगम्य हैं। तब यहाँ जीवः अस्ति। इसमें सभी प्रकार के आवान्तर भेदों की विवक्षा न रहने पर विवक्षावश सर्वसामान्य से अर्थात वस्तुरूप से है यह व्यवहार बनता है। तब इसके प्रतिपक्षी अभाव सामान्य से याने अवस्तुरूप से नहीं है ऐसा द्वितीयभाव बनता है इन दोनों ही बातों को जब एक साथ अभेद विवक्षा में बोलना चाहिए था तो कोई वाचक शब्द ही न मिला। तब वह अवक्तव्य नाम का तृतीय भंग बना। किंतु यहाँ इन ही दोनों को क्रम के विवक्षित करके कहा जा रहा है तब वस्तु उभयरूप विदित हुई। यों स्यात् अस्ति नास्ति यह चतुर्थ भंग बना। दूसरी निरूपण दृष्टि है विशिष्ट सामान्य और तदभाव की अपेक्षा से। जैसा कि सुना अथवा आगम से ग्रहण किया। आत्मा आत्मत्वरूप विशिष्ट सामान्य की दृष्टि से अस्ति है। तब अनात्मत्व की दृष्टि से नास्ति है। यहाँ अस्ति की विवक्षा है आत्मरूप से और नास्ति की विवक्षा है अनात्मरूप से। इन दो धर्मों का एक साथ विवक्षा होने पर तो अवक्तव्य भंग बना था। किंतु इन दोनों का क्रम से विवक्षा किये जाने पर यह चतुर्थ भंग स्यात् अस्ति नास्ति च बनता है।

विशिष्ट सामान्य और तदभावसामान्यसे, विशिष्टसामान्य और तद्विशेष से स्यादस्ति नास्ति चतुर्थभंगका निरूपण—अब तृतीय निरूपण दृष्टि है विशिष्ट सामान्य और तदभाव सामान्य की अपेक्षा। इस दृष्टि में आत्मा अपने नियत आत्मस्वरूप से है और पृथ्वी जल आदिक सब प्रकार से नास्ति है। इसमें अस्तित्व तो आया विशिष्ट सामान्य और नास्तित्त्व कहा गया है तदभाव सामान्य की अपेक्षा याने अन्य सभी प्रकार के पदार्थों का नास्तित्त्व है और अपने नियत स्वरूप से अस्तित्त्व है, इन दोनों ही धर्मों की युगपद् विवक्षा होने पर अवक्तव्य कहा था मगर जब इन दोनों में क्रम विवक्षा होने पर इस धर्म का प्रकाश किया गया है. तब वह चतुर्थ भङ्ग बना स्यात् अस्तिनास्ति। अब चतुर्थ निरूपण दृष्टि देखिये—यह है विशिष्ट सामान्य और तद्विशेष की अपेक्षा। आत्मा आत्मात्व रूप से है और आत्मा मनुष्यादिक रूप से नहीं है। यहाँ जिस समय आत्मा को ज्ञानस्वभाव चैतन्य रूप से अस्ति कहा है वहाँ मनुष्यत्वादिक विशेष की अपेक्षा से नहीं है अर्थात उसमें मनुष्यादिकपने का अभाव है। इसमें विशिष्ट सामान्य का जो अस्तित्व है वह तदविशेष से नास्तित्व है। इन दोनों धर्मों को क्रम विवक्षा में लेकर जब प्रकट करते हैं तब यह चौथा भङ्ग स्यात् अस्तिनास्तिजीवः यह बनता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सामान्य और विशिष्टसामान्यसे, द्रव्यसामान्य और गुणसामान्य से एवं धर्मसमुदाय और तद्व्यतिरेकसे स्यादस्ति नास्ति चतुर्थ भङ्ग का निरूपण—५वीं निरूपणदृष्टि है सामान्य और विशिष्ट सामान्य की अपेक्षा। आत्मा सामान्य दृष्टिसे अर्थात द्रव्यत्व रूप से अस्ति है और विशिष्ट सामान्य के अभाव रूप अनात्मतत्व से नास्ति है। यहाँ इस आत्मा को जब सामान्य रूप से निरखा जा रहा है तब विशिष्ट सामान्य के अभावरूप है इन दोनों धर्मों को एक साथ विवक्षा से अवक्तव्य कहा था किंतु यहाँ इन दोनों धर्मों के क्रम विवक्षा से यह चतुर्थ भङ्ग स्यात् अस्तिनास्तिजीवः बना। छठवीं निरूपण दृष्टि है द्रव्य सामान्य व गुण सामान्य की अपेक्षा। इसी आत्मा के जब द्रव्य सामान्यरूप से निरखा जा रहा है तो वह द्रव्यत्व रूप से अस्ति है। तब द्रव्यसामान्य से निरखे हुए इस आत्मा को गुणत्व की दृष्टि से नास्तित्व है। इन्हीं दोनों धर्मों को युगपद् विवक्षा में तृतीय भङ्ग बना था किंतु यहाँ इन दोनों धर्मों की क्रमशः विवक्षा होने से यह चतुर्थ भङ्ग उभयात्मक बना जिसकी मुद्रा है स्यात् अस्तिनास्तिजीवः। अब चतुर्थ भङ्ग प्रमाण सप्तभङ्गी में जो चतुर्थ भंग बताया गया है उसकी ७वीं निरूपण दृष्टि है धर्म समुदाय और तद्व्यतिरेक की अपेक्षा। इस जीव को जीव में रहने वाली अनेक शक्ति, अनेक गुण, उनके समुदायरूप से जब जीव को निरखा जा रहा तो उस धर्म समुदाय की अपेक्षा जीव अस्ति है तो उस ही समय तद्व्यतिरेक रूप से नास्तित्व है अर्थात उन समस्त धर्म समुदायों का अभावपना नहीं है। इन्हीं दोनों धर्मों की एक साथ विवक्षा होने पर तृतीय भंग बना था स्यात् अवक्तव्यः किंतु यहाँ इन्हीं दोनों धर्मों की क्रम से विवक्षा होने पर चतुर्थ भंग बनता है स्यात् अस्तिनास्तिजीवः।

धर्म सामान्य सम्बन्ध और तदभाव से एवं धर्म विशेष सम्बन्ध और तद्भाव से स्यादस्ति नास्ति चतुर्थभंग का निरूपण—चतुर्थ भंग में ८वीं निरूपणदृष्टि है धर्मसामान्य सम्बन्ध और तदभाव इस आत्मा को जब ज्ञानादिक गुणों के सामान्य सम्बन्ध की दृष्टि से तका जा रहा है तो वह जैसे अस्तिविदित होता है वह कभी भी धर्म सामान्य के सम्बन्ध के अभावरूप नहीं रहता है इस कारण तदभाव की दृष्टि से नास्ति होता है। इन दोनों धर्मों को एक साथ की विवक्षा में अवक्तव्य कहा था। तो क्रमशः उभय विवक्षा में यह उभयात्मक है अर्थात स्यात अस्तिनास्तिजीवः है। प्रमाण सप्तभंगी के इस चतुर्थ भंग की ९वीं निरूपणदृष्टि है धर्म विशेष सम्बन्ध और तद्भाव की अपेक्षा। आत्मामें विशेष धर्म भी पाये जाते हैं। उन विशेष धर्मों को विशेषित करके जब जीव को अस्ति (है) परखा तो उसी समय अन्य अविवक्षित धर्म विशेषों की ओर से वह नास्तित्वरूप से परखा गया। अथवा विवक्षित धर्म के सम्बन्ध की दृष्टि से आत्मा अस्ति है तो उसी के अभाव रूप से नास्ति है। जैसे जब आत्मा को नित्यत्वदृष्टि से देखा जा रहा है तो कहा जायेगा कि स्यात् नित्यः तो अन्य पर्यायार्थिक की प्रधानता से कहा जायेगा स्यात अनित्यः अथवा नित्यत्व की दृष्टि से उस नित्यत्व धर्म विशेष के सम्बन्ध से जो आत्मा अस्ति है वही उस रूप वाला विपक्षी धर्म से नास्ति है। इस प्रकार दोनों धर्मों की क्रम से विवक्षा में यहाँ स्यातनास्तिजीवः यह चतुर्थ भग बना।

प्रमाणसप्तभंगी में पञ्चमभंग स्यादास्ति अवक्तव्यएव का निर्देशन—प्रमाण सप्तभंगी में ५वाँ भंग है तीन स्वरूपों में द्विसंयोगी भंग। पहला स्वरूप तो यह है कि अनेक द्रव्यात्मक और अनेक पर्यायात्मक इस जीव के किसी भी द्रव्यार्थ विशेष या पर्यायार्थविशेष का आश्रय कर कहा जाता है स्यात्अस्ति। यह इसका प्रथम स्वरूप है जिसको कि प्रथम भंग में बताया गया था। अब उस ही

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्मा के बारे में दूसरा स्वरूप अंश है अवक्तव्य जो दो आत्मस्वरूप का युगपद् विवक्षित है। यहाँ द्रव्यसामान्य और पर्यायसामान्य अथवा द्रव्य विशेष व पर्यायविशेष को अंगीकार करके एक साथ अविभक्त रूप से विवक्षा में यह अवक्तव्य भंग बनता है। तो पंचम भंग का अर्थ यह हुआ कि जैसे आत्मा द्रव्य रूप से या द्रव्य विशेष रूप से या जीव स्वरूप से या मनुष्यत्व आदिक विशेष रूप से स्यात् अस्ति (है) तो साथ ही द्रव्य पर्याय सामान्य को स्वीकार करके वस्तुत्व का सत्त्व और वस्तुत्व का असत्व दोनों को ही एक साथ अभेदविवक्षा करने पर वह अवक्तव्य है। इस प्रकार यह पंचम भग बना, स्यात् अस्ति अवक्तव्यः जीवः। यह भंग भी समग्र वस्तु का बोध कराने वाला है। क्योंकि अंश के साथ अभेद विवक्षा होने पर एक अंश के ही द्वारा समग्र धर्मों का संग्रह हो जाता है। इस पंचम भग में क्रम से द्रव्यार्थिक व उभय प्रधान है। द्रव्यार्थिक की प्रधानता में तो रूप बना स्यात्अस्ति और उभय की प्रधानता में युगपद् अभेद विवक्षा होने से द्रव्य बना अवक्तव्यः।

प्रमाण सप्तभंगी में स्यान्नास्ति अवक्तव्य एव षष्ठ भंग का निर्देशन—अब प्रमाण सप्त-भंगी में छठवां भङ्ग बना तीन आत्मरूपों से दो अंश वाला। इसमें प्रथम रूप तो है वस्तुगत नास्तित्व अर्थात् अन्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा नास्तित्व और दूसरा अंश है अवक्तव्य। अर्थात् जब वस्तुगत नास्ति ही अवक्तव्य रूप से सम्बद्ध होकर विवक्षित होता है तब यह छठवां भङ्ग बनता है। यह नास्तित्व है पर्याय दृष्टि से। पर्यायें दो तरह की होती हैं—(१) सहभाविनी और, (२) क्रम भाविनी। जो सब एक साथ रह सकें वह तो है सहभाविनी। जैसे गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान आदिक, जिस ही समय में कोई गति पर्याय है उसी समय में कोई इन्द्रिय पर्याय भी है, शेष पर्यायें भी हैं। तो ऐसी पर्यायें सहभाविनी कहलाती हैं और किसी एक गुण की पर्यायें क्रमभाविनी कहलाती हैं, क्योंकि एक गुण की पर्याय एक समय में एक ही होती है। अब यद्यपि उनमें से गति आदिक से व्यतिरिक्त और क्रोधादिक क्रमवर्ती पर्यायों से विलक्षण शाश्वत जीव द्रव्य है तथापि किसी की भी पर्याय का निरन्तर होते रहना होता ही है। सो द्रव्यार्थ दृष्टि से गुण पर्यायें जिसमें अस्त है ऐसा कोई एक अवस्थित जीव नाम का द्रव्य है निरखा जाता है। द्रव्यार्थिक दृष्टि में जिस जीव को निरखा गया हैं उसमें न सहभाविनी पर्याय की दृष्टि है न क्रमभाविनी पर्याय की दृष्टि है, पर वह ही धर्म जो द्रव्यार्थ में नहीं है पर पर्यायार्थ की दृष्टि में तो है और वह जीव सज्ञा को प्राप्त है तो इस दृष्टि में नास्तित्व धर्म आया अर्थात् इन पर्यायों के रूप से द्रव्यार्थ जीव में नास्तित्व है। जो वस्तु रूप से सत् है वह तो है द्रव्यार्थ का अंश और जो उसका प्रतियोगी अवस्तु रूप से असत् है वह है पर्याय का अंश। इन दोनों की एक साथ अभेद विवक्षा होने पर अवक्तव्य बना, यह हुआ दूसरा अंश। इस छठे भङ्ग में दो अंश बताये गये हैं। प्रथम अंश तो है पर्यायार्थ की दृष्टि की प्रधानता में स्यान्नास्ति। दूसरा अंश हैं द्रव्यार्थ और पर्यायार्थ दोनों की एक साथ प्रधानता में। तब यह भङ्ग बना—स्यात् नास्ति अवक्तव्यः। यह भङ्ग भी सकलादेश है, क्योंकि इस भङ्ग में बताये हुये धर्म रूपों से अखण्ड वस्तु का ही ग्रहण हो रहा है।

सकलादेश में स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य एव सप्त भंग का निरूपण—अब ७वां भङ्ग बतलाते हैं कि वह चार स्वरूपों से तीन अंश वाला है। तीन अंश तो यह है स्यात् अस्ति। स्यात् नास्ति, स्यात् अवक्तव्यः। इसके सम्बन्ध में बना स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्यः। यहाँ स्यात् अस्ति अंश द्रव्यार्थ दृष्टि से बना, स्यात् नास्ति अंश पर्यायार्थ दृष्टि में बना, दो रूप तो ये हुये और दो स्वरूप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एक साथ है, जिसे कहते हैं अवक्तव्य। इस भंग में किसी द्रव्यार्थ विशेष की अपेक्षा अस्तित्व है, किसी पर्याय विशेष की अपेक्षा नास्तित्व है और किसी द्रव्य पर्याय विशेष अथवा द्रव्य पर्याय सामान्य की युगपद अभेद विवक्षा में अवक्तव्य है। यह सप्तम भंग भी सकलादेश है, क्योंकि इस भंग में भी जो विवक्षित धर्म रूप शब्द से कहा गया उस धर्म रूप से अभेद होने के कारण अखण्ड समस्त वस्तु का ग्रहण होता है। इसी प्रकार सकलादेश सम्बन्धित प्रमाण सप्तभंगी का वर्णन हुआ।

विकलादेश का विधान—अब बतलाते हैं कि ये ही भंग जब शब्द की मुख्यता से चलते हैं तो यह ही विकलादेश हो जाता है। निरंश वस्तु में गुण भेद से अंश कल्पना विकलादेश है। वस्तु स्वरूपतः अविभागी अखण्ड सत् है। उस वस्तु में नाना गुणों की अपेक्षा अंश कल्पना की जाती है तो अखण्ड वस्तु में अब अनेकत्व और एकत्व की व्यवस्था बनाना आवश्यक ही है। अनेकपने की व्यवस्था न बने तो तीर्थ प्रवृत्ति नहीं चल सकती। वस्तु की समझ ही नहीं बनायी जा सकती। पर को समझाया नहीं जा सकता और एकत्व की व्यवस्था न बने तो तत्त्व का ही लोप होता है। तब समुदायात्मक वस्तु स्वरूप को स्वीकार करके ही काल आदिक की दृष्टि से परस्पर विभिन्न अंशों की कल्पना करना यह है विकलादेश। एक में एकत्व की कल्पना करना विकलादेश नहीं। यद्यपि वह अखण्ड एक, मगर अंश कल्पना होने पर विकलादेश बनता है। जैसे—अनार, कपूर, इलायची आदिक से बना हुआ शर्बत है उस शर्बत को पीने पर विलक्षण रस की अनुभूति होती है और जो विलक्षण रस विज्ञान हुआ उसकी स्वीकृति हो जाती है, उसके बाद अपनी पहिचान के अनुसार कोई एक रस प्रधान आया चित्त में तो ऐसा विवेचन किया जाता है कि इस शर्बत में इलायची अच्छी पड़ी है या कपूर पड़ा हुआ है। अब यहाँ उस विलक्षण रस की अनुभूति और स्वीकृति भी है और प्रतिपादन किसी एक रस की प्रधानता से है, इसी तरह वस्तु तो है अनेकान्तात्मक सो उसकी स्वीकृति के बाद किसी हेतु विशेष से विवक्षित अंश का अनुभव करना यह कहलाता है विकलादेश। वस्तु अखण्ड है तो भी उसमें गुण दृष्टि से भेद बनता है। जैसे कोई एक बालक के प्रति कहता है कि यह बालक गत वर्ष तो चतुर था और इस वर्ष बहुत चतुर है। बालक वही एक है, पर उसमें गुणों के भेद से दो भेद कर दिये गये, तो ऐसे ही अखण्ड वस्तु में गुण भेद से भेद समझाना यह तत्त्व विज्ञान मार्ग में चलने वाले के लिए प्राकृतिक बात है।

विकलादेश में सप्तभंगी—विकलादेश में भी सप्तभंगी होती है। जैसे प्रमाण सप्तभंगी में सकलादेश था और ७ भंग थे वैसे ही ७ भंग नयसप्तभंगी में भी होते हैं। मूल अन्तर यह है कि प्रमाण सप्तभगी में अर्थाधिगम्य वाच्य प्रधान होता है। नय सप्तभंगी में श्रुतिगम्य वाच्य प्रधान होता है, जिन शब्दों से धर्म का विवेचन किया गया है उन शब्दों की प्रधानता है। यद्यपि विकलादेश में भी अनेकात्मक वस्तु को स्वीकार करके ही उसमें से एक अंश का प्रतिपादन किया गया है एकान्तवाद नय सप्तभंगी में भी नहीं है किन्तु यहां शब्द-वाच्य धर्म प्रधान है तो अखण्ड वस्तु में गुण भेद करके जो अंश जताये गये उनमें क्रम, यौगपद्य तथा क्रमयौगपद्य की विवक्षा के वश ये भंग होते हैं। प्रथम भंग है स्यात् अस्ति। यहाँ प्रकरण चल रहा है जीव की सत्ता सिद्ध करने का। तो तद् विषयक भंग बना स्यात् अस्ति जीवः, द्वितीय भंग हुआ स्यात् नास्तिएव जीवः, तृतीय भंग है स्यात् अवक्तव्यः जीवः, चौथा स्यात् अस्ति नास्ति जीवः। ५वां स्यात् अस्ति अवक्तव्यः जीवः, छठा स्यात् नास्ति अवक्तव्यः जीवः और ७वां स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्यः जीवः, यहां प्रथम और द्वितीय भंग में

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वतन्त्र क्रम है, तीसरे भंग में यौगपद्य है, चौथे भंग में संयुक्त क्रम है, ५वें और छठे भंग में स्वतन्त्र क्रम के साथ यौगपद्य है तथा ७वां संयुक्तक्रम और यौगपद्य है।

विकलादेश के भंगों की अपेक्षायें—नय सप्तभगी में प्रथम भंग जो स्यात् अस्ति एव जीवः हुआ वह सर्व सामान्य आदिक किसी एक द्रव्यार्थ दृष्टि से हुआ और वह पहला विकलादेश है। इस प्रथम भंग में शेष धर्म वस्तु में यद्यपि विद्यमान हैं तो भी काल आदिक की अपेक्षा भेद बुद्धि होने से शब्द के वाच्य रूप से स्वीकृत नहीं है। इसी कारण उन इतर धर्मों का न यहां विधान ही है और न यहाँ प्रतिषेध ही है। यही बात सर्व भंगों में समझना कि अपने-अपने विवक्षित धर्मों में वहां प्रधान है, अन्य धर्मों के प्रति उदासीनता है। विकलादेश में ऐसे विवक्षित धर्मों की प्रधानता होने पर भी स्वीकृति अनेकात्मक वस्तु की ही है। नय का लक्षण भी यही है कि प्रमाण से ग्रहण की हुई वस्तु में विवक्षावश किसी एक धर्म का प्रतिपादन करना नय है। यहाँ एक प्रश्न होता है कि जब प्रथम भंग में अस्तिएव शब्द कहकर एवकार के द्वारा अवधारण कर दिया कि इस अपेक्षा से जीव है ही तो इस अवधारण के करने से अन्य धर्मों की निवृत्ति हो जाती है तो उदासीनता कहां रही ? उदासीनता तो उसे कहते हैं कि जहाँ न विधान हो और न प्रतिषेध हो, मगर अवधारण में अन्य धर्मों का प्रतिषेध हो ही जाता है। फिर उदासीनता कहाँ रही ? इसका उत्तर यह है कि अन्य धर्म नियत शब्द द्वारा वाच्य नहीं है, यही उदासीनता का अर्थ है। वैसे तो शेष धर्मों के सद्भाव को प्रकट करने के लिये स्यात् शब्द का प्रयोग किया ही गया है। इतर धर्मों का प्रतिबन्ध नहीं है, क्योंकि यदि इतर धर्मों का प्रतिषेध कर दिया जायेगा तो यह विवक्षित धर्म भी नहीं रह सकता। फिर तो सबका लोप ही हो जायेगा। स्यात् शब्द के साथ प्रत्येक भंग में अवधारण किया गया है जिससे यह सिद्ध होता है कि विवक्षित धर्म के साथ ही साथ अन्य धर्म विशेष भी पदार्थ में हैं।

सप्त भंगों की प्राकृतिकता—किसी भी एक धर्म को प्रस्तुत करने के प्रसंग में ७ भंग प्रकृत्या हो जाते हैं। जैसे कोई एक धर्म रखा नित्यपना, तो इसके साथ इसका प्रतिपक्षी धर्म भी है। वह भी कहना आवश्यक हुआ। जब दो हुये तो दोनों को एक साथ कहा नहीं जा सकता इस कारण अवक्तव्य भंग बना। दो धर्मों को क्रम विवक्षा से द्विसंयोगी प्रथम भंग बना, फिर एक धर्म और अवक्तव्य को क्रम से विवक्षा करने पर ५वां, छठवां भंग बना और उनके अतिरिक्त प्रस्तुत धर्म, प्रतिपक्ष धर्म और अवक्तव्य क्रम से विवक्षित होने पर ७वाँ भंग बना। प्रश्न भी ७ ही प्रकार के किसी धर्म की सिद्धि में हो सकते हैं। वस्तु सामान्य विशेष और उभय धर्म से युक्त है इस कारण कोई भी धर्म प्रस्तुत करने पर उसके निरूपण में ७ प्रकार के भंग बनते हैं। ये ७ प्रकार के भंग अपुनरुक्त हैं। यद्यपि इनमें अंश तो पुनरुक्त है पर किन आत्म रूपों से अंश बनाया गया है वह भंग अपुनरुक्त है। ऐसे अपुनरुक्त वचन अधिक से अधिक ७ प्रकार के हो सकते हैं। और यह सब फैलाव द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों नयों की विवक्षा से होता है इन नयों के स्पष्टीकरण के लिये और भंगों में इसका सहयोग समझने के लिये कुछ नय प्रसंग जानना आवश्यक है।

सप्त भंगों का आधारभूत नयविभाग—सप्तभंगी में आधारभूत नय संग्रह और व्यावहाररूप है। संग्रहनय तो सत्त्व को विषय करता है या यों कहो कि सप्तभंग के प्रकरण में जो धर्म प्रथम प्रस्तुत किया है उसको विषय करने वाला संग्रह है, क्योंकि यह संग्रह समग्र वस्तु तत्व का सत्ता में अन्तर्भाव करके अभेद रूप से संग्रह करता है। तो संग्रहनय तो सत्त्व को विषय करने वाला,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हुआ और व्यवहारनय असत्त्व को विषय करने वाला हुआ, क्योंकि यह व्यवहारनय उन परस्पर भिन्न सत्त्वों को ग्रहण करता है जिसमें एक दूसरे का असत्त्व अन्तर्भूत है। जैसे जीव है ऐसा बोलने पर वह पररूप से नहीं है यह कथन है तो वहाँ सर्वथा असत्त्व तो नहीं कहा गया, किंतु प्रस्तुत धर्म में प्रतिपक्षरूप से असत्त्व है, यह प्रकट किया गया है। तो संग्रहनय और व्यवहारनय यह सत्त्व और असत्त्व का विषय करने वाला है। व्यवहारनय भी भेद करके किसी एक का ग्रहण करता है तो सत्त्व से ही विषय किया मगर भेद करके ग्रहण किया इसका अर्थ ही यह है कि उन अन्य इतरों का असत्त्व उसमें अन्तर्भूत है।

शब्दनयों की दृष्टियां—शब्दनय और अर्थनय रूप से भी नयों के विभाग हैं। शब्दनय के तो शब्द, समभिरुढ़ और एवंभूत —ये तीन नय विभाग होते हैं और अर्थनय के संग्रह, व्यवहार और ऋजुसूत्र —ये तीन होते हैं। ऋजुसूत्रनय वर्तमान क्षणवर्ती पर्याय को जानता है। यहाँ पर्यायात्मक वस्तु में मात्र पर्याय को ग्रहण करना ऋजुसूत्रनय का काम है। पर्यायें भी दो प्रकार की हैं — (१) स्थूल पर्याय (२) सूक्ष्म पर्याय। सूक्ष्म पर्याय तो गुण पर्याय होती है। स्थूल पर्याय व्यञ्जन पर्याय होती है। सभी को ऋजुसूत्रनय जानता है। पर वर्तमान को ही जानता है। ऋजुसूत्रनय की दृष्टि में व्यवहार नहीं चलता। तीर्थप्रवृति का इसमें कुछ सहयोग नहीं है। हाँ विषय है। पर्याय चूंकि क्षणवर्ती है, वह ओझल तो नहीं की जा सकती। उस विषय की जानकारी ऋजुसूत्रनय से हुई है। ऋजुसूत्रनय से व्यवहार क्यों नहीं चलता, इसका कारण यह है कि ऋजुसूत्रनय की दृष्टि में अतीत तो अतीत होने से ग्रहण में नहीं है भविष्यत् भी ग्रहण में नहीं, क्योंकि वह अनुत्पन्न है। तो वह केवल क्षणवर्ती पर्याय को ग्रहण करता है। उससे व्यवहार नहीं बनता। व्यवहार बना करता है अतीत और अनागत पर्याय पर भी दृष्टि हो अथवा प्रत्यभिज्ञान की मुद्रा चलती रहे। तो अर्थनय यहाँ ३ हैं—(१) संग्रहनय (२) व्यवहारनय (३) ऋजुसूत्रनय। ये तीनों अर्थनय मिलकर तथा अलग अलग भी रहकर इन ७ प्रकार के भंगों को उत्पन्न करते हैं।

भंगों की नयापेक्षतावों का दिग्दर्शन—पहला भंग संग्रह से उत्पन्न हुआ है। जैसे बताया— स्यात् अस्तिएव जीव: तो इसने जोव का अस्तित्व ही तो ग्रहण किया और वह अस्तित्व जीव में रहने वाले अन्य धर्मों का संग्रह रखते हुए किया है। अर्थात स्यात् शब्द के प्रयोग से प्रस्तुत धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों का भी ग्रहण हुआ है। दूसरा भंग व्यवहार से बना है। व्यवहार असत्त्व को विषय करने वाला बताया है। सर्वथा असत्त्व को विषय नहीं करता, किंतु सत्त्व में असत्त्व अन्तर्भूत है और उस नास्तित्वसमन्वित अस्तित्व को जानता है तो यहाँ नास्तित्व की मुख्यता है उससे दूसरा भंग बना। तीसरा भंग युगपद् विवक्षा में बनता है तो वहाँ संग्रह और व्यवहार दोनों ही अभेद रूप हैं। चौथा भंग क्रम विवक्षा में संग्रह और व्यवहार के समुदायरूप है। जैसे स्यात् अस्तिनास्ति जीवः, इसमें अस्ति संग्रह है, नास्ति व्यवहार हैं और दोनों का यहाँ समुच्चय है। ५वां भंग बना संग्रह और संग्रह व्यवहार का अभेद में। जैसे स्यात्, अस्ति, अवक्तव्य, इनमें अस्ति अंश है संग्रहविषयक और अवक्तव्य अंश है अविभक्त संग्रहव्यवहार विषयक। छठवाँ भंग बनता है व्यवहार और अविभक्त संग्रह व्यवहार से। इस भंग की मुद्रा है स्यात् नास्ति अवक्तव्य। यहाँ नास्ति अंश है व्यवहार विषयक और अवक्तव्य अंश है संग्रह व्यवहार का अभेद विषयक। ७वाँ भंग बना संग्रह व्यवहार और अविभक्त संग्रहव्यवहार के सामुच्चय में। ७ वें भंग की मुद्रा है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्यः । इसमें अस्ति अंश है संग्रहविषयक, नास्ति अंश है व्यवहारविषयक और अवक्तव्य अंश है संग्रहव्यवहार का अभेद विषयक। इस प्रकार संग्रह व्यवहार के समुदाय में और विवक्षा में ये ७ भंग प्रयुक्त हुए हैं।

प्रतिपादन में शब्दनयों का सहयोग—शब्दनयों में प्रथम शब्दनय व्यञ्जन पर्यायों को विषय करते हैं। सो इस नय में भी अभेद और भेद दो प्रकार से वचन प्रयोग होता है। इसका कारण यह है कि शब्दनय अनेक शब्दों से एक पर्याय को ग्रहण करता है। उस पर्याय के वाचक अनेक शब्द हैं। उनमें से किसी का भी प्रयोग होने पर उसी अर्थ का कथन होता है। तो अनेक शब्दों में अभेद होने से शब्दनय में अभेद विधि है। शब्दनयों में दूसरा नय है समभिरूढ़नय। समभिरूढ़नय में भी अभेद विधि का प्रयोग होता है। समभिरूढ़नय किसी एक पदार्थ को ग्रहण करता है जिसमें कि रूढ़ि हो, प्रसिद्धि हो। इतना तो अन्तर आया शब्दनय की अपेक्षा कि शब्दनय अनेक अर्थों को प्रकट कर सकता था, पर समभिरूढ़नय एक हो अर्थ का वाचकशब्द को बताता है। जैसे–गो शब्द के अर्थ अनेक हैं— गाय, गणी आदिक, किंतु गो शब्द गाय अर्थ में समभिरूढ़ है। सो इतना अन्तर तो शब्दनय व समभिरूढ़नय में सूक्ष्म विषय का अन्तर आया, किंतु समभिरूढ़ में यह नियन्त्रण नहीं है कि उस अर्थ का वाचक शब्द का जो भाव है उस ही भावरूप में परिणत अर्थ को कहे। जैसे घट शब्द से घटका बोध हुआ तो वहाँ चाहे घटन क्रिया परिणत हो या घटन क्रिया अपरिणत हो, किसी भी घटका निरूपण हो जाता है। तो यह दोनों में अभेद रहा, अथवा जैसे गो शब्द ने गाय को तो कहा, पर गो का अर्थ है जाने वाला। गच्छति इति गौः। तो अब चाहे वह जा रही हो गाय, चाहे वह बैठी हो गाय, सभी गायों का समभिरूढ़नय में ग्रहण है इस कारण एवंभूत की अपेक्षा वह अभेद रूप है। शब्दनय का तृतीय भेद है एवंभूत। एवंभूतनय में प्रवृत्ति के निमित्त से भिन्न ही अर्थ का निरूपण होता है। जैसे एवंभूतनय की दृष्टि में पुजारी उसे ही कहा जायेगा जो पूजा कार्य में बर्त रहा हो। अन्य समय वह पुजारी न कहलायेगा। शब्दनय के इन ३ नयों में यह भी तथ्य जानना कि शब्दनय में तो अनेकपर्यायवाची शब्दों का वाच्य एक ही होता है। समभिरूढ़नय में चूंकि शब्द नैमित्तिक है, समभिरूढ़ है अतः एकशब्द का वाच्य एकही होता है तथा एवंभूतनय वर्तमान निमित्त को ही पकड़ता है। वर्तमान क्रिया परिणत पदार्थ को ही उस नियत शब्द से बोलता है इस कारण एवंभूतनय के मत में भी एक शब्द का वाच्य एक ही है और वह भी उस क्रिया से परिणत है। इन नयों में सप्तभंग कैसे प्रयुक्त होता है यह बात नयों के आधार से बताया है। जहाँ पर्यायों को मुख्य करके धर्म कहा जाय वहां ऋजुसूत्रनय का भी उनमें सहयोग होता है। इस प्रकार किसी भी वस्तु को सिद्ध करने के लिये सप्तभंगी का प्रयोग होता है।

सत्त्व असत्त्व धर्मों में विरोध की शंका व उसके समाधान की भूमिका—अब यहाँ एक जिज्ञासा होती है कि सप्तभंगों में जिन धर्मों को कहा गया है वे धर्म परस्पर विरोधी सरीखे दिख रहे हैं। जैसे अस्तित्व और नास्तित्व। नास्तित्व शब्द 'अस्तित्व से अत्यन्त विपरीत है। तो ऐसे विपरीत धर्मों में तो विरोध होता है। तब फिर एक वस्तु में ऐसे विरुद्ध धर्म कैसे रह सकते हैं ? इस जिज्ञासा के समाधान में कहते हैं कि विरोध का स्वरूप विचारने पर यह बात सुगमतया विदित हो जायगी कि अस्तित्व नास्तित्व जैसे विरुद्ध दिखने वाले धर्म भी एक वस्तु में अविरोध रूप से रह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाते हैं। विरोध का क्या स्वरूप है यह विरोध के भेदों के परिचय से विदित हो जायगा। विरोध होता है तीन तरह का। (१) बध्यघातकभाव (२) सहानवस्थान और (३) प्रतिबंध्य+प्रतिबंधक भाव।

सत्त्व असत्त्व धर्मों में बध्यघातकभावरूप विरोध का अनवकाश—बध्यघातक के मायने कोई एक मारा जाने योग्य है कोई एक मार डालने वाला। जैसे सर्प और नेवला, इनमें मानों सर्प बध्य है और नेवला घातक है अथवा अग्नि और जल लीजिये। इनमें अग्नि बध्य है और जल घातक है। अग्नि और जल का संघर्ष हो तो अग्नि बुझ जायगी। तो बध्यघातकभाव का यह भाव है। अब इस सम्बन्ध में यह विचार करना कि बध्यघातकभाव दो विद्यमान पदार्थों में होता है और वह भी उन दो पदार्थों का संयोग होने पर होता है। जैसे साँप और नेवला दूर-दूर विचर रहे हैं तो उनमें बध्य-घातकभाव कुछ नहीं है। जब उनका संघर्ष होता है तो वहाँ जो बलवान हो वह घातक बनता है। जो निर्बल हो वह बध्य होता है। अथवा अग्नि जल के दृष्टांत में देखिये—अग्नि और जल अलग अलग पड़े हैं तो उनमें बध्यघातकभाव कुछ नहीं है। तालाब में पानी है, रसोईघर में आग है, सब अपनी-अपनी जगह ठीक हैं। सयोग हुये बिना अग्नि बध्य नहीं होता, जल घातक नहीं होता। यदि तालाब से एक लोटा जल लेकर उसे आग पर डाल दिया जाय तो अग्नि बध्य हो गई और जल घातक हो गया। तो बध्यघातकभाव में मूल बात यह है कि संयोग होने पर ही बध्यघातकभाव बनता है। यदि संयोग के बिना बध्यघातकभाव बन जाय तो दुनिया में अग्नि कहीं मिलेगी ही नहीं, क्योंकि संयोग न होने पर भी जल को अग्नि का घातक मान लिया, फिर तो अग्नि का अभाव ही हो जायेगा। तो बिना संयोग के जल अग्निको बुझा नहीं सकता। यह बध्यघातकभाव का तथ्य है। अब आप यह बतलाओ कि कि आप शंकाकार अस्तित्व और नास्तित्त्व को बध्यघातकभाव से देखते हैं तो अस्तित्त्व और नास्तित्त्व ये दोनों एक वस्तु में रह रहे हैं या नहीं रह रहे। अगर अस्तित्व और नास्तित्त्व एक वस्तु में नहीं हैं तो फिर विरोध कैसा? बध्यघातकभाव तो संयोग बिना विरोधी नहीं बनता। तो जब अस्तित्व और नास्तित्व का एक वस्तु में संयोग ही नहीं मान रहे तो बध्यघातकभावरूप विरोध सिद्ध नहीं होता और यदि अस्तित्व नास्तित्व दोनों का रहना एक एक वस्तु में एक साथ स्वीकार करते हो तो अब दोनों ही धर्म समान बलशाली हैं। जब समान बल-शाली हैं तो एक दूसरे को कैसे बाधा दे सकते हैं? समान बलशाली दोनों धर्म इस प्रकार हैं कि जैसे स्व स्वरूप से अस्तित्व के बिना वस्तु नहीं है ऐसे ही पररूप से नास्तित्व के बिना भी वस्तु नहीं है। जब ये दोनों धर्म समान बलशाली हैं तो इनमें बध्यघातकभाव का विरोध नहीं हो सकता।

सत्त्व असत्त्व धर्मों में सहानवस्थान लक्षण विरोध का अनवकाश—प्रश्न— यदि अस्ति नास्ति धर्म में बध्यघातकभाव नाम का विरोध नहीं होता है तो सहानवस्थान नाम का विरोध मान लीजिये। **उत्तर**— सहानवस्थान विरोध एक वस्तु के क्रम से होने वाली दो पर्यायों में होता है। नवीन पर्याय उत्पन्न हुई तो वहाँ पूर्व पर्याय नष्ट हो जाती है। पूर्वोत्तर पर्याय एक साथ नहीं रहती। जैसे आम का पीला रूप उत्पन्न होता है तो वहाँ पूर्व रूप हरा रंग नष्ट हो जाता है। सो पूर्वोत्तर पर्याय एक साथ न हुई वही सहानवस्थान विरोध है। परन्तु प्रकृत में यह तो बताओ कि अस्तित्व और नास्तित्व क्या क्रमिक धर्म हैं? जैसे कि पूर्व और उत्तर पर्याय क्रमिक हैं। नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अस्तित्व और नास्तित्व क्रमिक नहीं हैं। अर्थात जब अस्तित्व हो तब नास्तित्व न हो, जब नास्तित्व हो तब अस्तित्व न हो एक वस्तु में ऐसा बिल्कुल नहीं। यदि ऐसा मान बैठें कोई कि अस्तित्व के काल में नास्तित्व नहीं है तो इसका यह ही अर्थ तो हुआ कि जब वस्तु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से अस्ति है तब वह पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नास्ति नहीं है। सो यदि पररूप से नास्तित्व यहाँ नहीं मान रहे तो अर्थ यह होगा कि वह पदार्थ समस्त पररूप हो गया। जब समस्त पररूप हो गया तो उसका भी अस्तित्व कहाँ रहा। क्योंकि अब तो पदार्थ सर्वरूप है। तो जिस धर्म को सिद्ध करना चाहते हैं, जिस वस्तु को सिद्ध करना चाहते हैं वह अस्तित्व ही न रख सका। इसी प्रकार दूसरा पक्ष विचारिये कि नास्तित्व के काल में अस्तित्व का अभाव है। तो अस्तित्व के अभाव का अर्थ यह हुआ कि पदार्थ अपने स्वरूप से अस्ति है ऐसा नहीं, तो लो, जब स्वरूपास्तित्व ही नहीं है तो शून्य हो गया, कुछ रहा ही नहीं। तो जब जीव ही न रहा, कुछ ही न रहा तब बंध मोक्ष की व्यवस्था ही क्यों करते ? बंध किसको है ? असत् को नहीं, शून्य को नहीं। यहाँ तो जोव हो कुछ न रहा जब बंध नहीं बनता है तो मोक्ष किसके का और मोक्ष लिए पुरुषार्थ भी क्या ? तो मोक्ष का भी व्यवहार न रहा, धर्म भी न रहा, पर एक बात तो सोचें, अगर ऐसा सर्वथा असत् है तो उसके बारे में व्यवहार नहीं बनता, और कोई माने कि उसको उत्पत्ति हो लेगी। जीव यद्यपि असत् है, पर वह बन जाता है, तो यह कपोलकल्पित बात है। सर्वथा असत् की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। उपादानभूत कुछ नहीं हो, और कोई मुद्रा बन जाय, परिणति बन जाय यह सम्भव ही नहीं है, और यदि सत् है तो उसका सर्व प्रकार विनाश हो ही नहीं सकता। अस्तित्व और नास्तित्व तो एक साथ रहने वाले धर्म हैं। इनमें सहानवस्थान विरोध नहीं है। जैसे जीव सर्व समय में अपने द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव से है और वही जीव सर्व समयों में परके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे नहीं है, तो पर रूप से नास्तित्व और स्वरूप से अस्तित्व दोनों ही पदार्थों में एक साथ रहा करते हैं, यह तो वस्तु का स्वरूप ही है, और इसी कारण अस्तित्व और नास्तित्व धर्म का सहानवस्थान विरोध नहीं है और ये दोनों धर्म जब एक वस्तु में एक साथ रहते हैं तो इसकी प्रधानता और अप्रधानता में क्रम विवक्षा और यौगपद्य विवक्षा में ७ भंग हो ही जाते हैं।

सत्व असत्व धर्मों में प्रतिबन्ध्य प्रतिबन्धकभावरूप विरोध का अनवकाश—अब शंकाकार कहता है कि अस्तित्व नास्तित्व धर्म में सहानवस्थान विरोध भी न रहे किंतु प्रतिबन्ध्य प्रतिबन्धक भावरूप तो विरोध है और इस विरोध के कारण अस्तित्व नास्तित्व का एक साथ एक वस्तु में ठहरना नहीं हो सकता। उत्तर—अस्तित्व और नास्तित्व में प्रतिबन्ध्य प्रतिबन्धक भाव रूप भी विरोध नहीं है। प्रतिबन्ध्य प्रतिबन्धक भाव का अर्थ है कि एक तो है प्रतिबन्ध करने वाला और एक हो प्रतिबन्ध में आने वाला, एक रोधक है, प्रेरक है और एक रुध जाता है जैसे आम का फल वजनदार है और उसमें नीचे गिरने का स्वभाव है। जो जो भी वजनदार वस्तुवें हैं उनमें नीचे गिरने का स्वभाव पड़ा है। किंतु आम जब तक डाल के डंठल में लगा है तब तक वह संयोग प्रतिबन्धक है कि वह आम को नीचे नहीं गिरने देता। तो यहां आम्रफल और डण्ठल का संयोग तो प्रतिबन्धक है, और वजनदार होने पर भी आम का अध:पतन नहीं हो पाता। यह उस समय प्रतिबन्ध्य है। कुछ वैज्ञानिक ऐसा कहते हैं कि पृथ्वी में आकर्षण स्वभाव है सो चीजों को पृथ्वी अपनी ओर खींचे रहती है। पर यह तो एक कल्पना की ही बात है। प्रत्यक्ष सिद्ध यह ही बात है कि जो वजनदार पदार्थ है उसके नीचे गिरने का स्वभाव है इसलिये नीचे गिरकर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पृथ्वी पर पड़ जाता है व पड़ा रहता है। यदि पृथ्वी का आकर्षण करने का स्वभाव हो और वस्तु में अधः पतन स्वभाव न हो तो यह बतलाये कोई कि पत्ते जो जरा सी हवा में उड़ते रहते हैं उन पत्तों जैसे कम वजनदार पदार्थों को तो पृथ्वी और भी जल्दी आकर्षित कर ले, वजनदार चीजों को खींचने में देर भी लग सकती है मगर हल्के पदार्थ को खींचने में क्यों देर लगती, या क्यों नहीं खींचती। सो भाई आकर्षण शक्ति पृथ्वी में नहीं किंतु गुरु पदार्थ में नीचे गिरने का स्वभाव होता है। तो आम का फल गुरु (वजनदार) है, उसका नीचे गिरने का स्वभावहै, पर जब तक डन्ठल से सम्बंध है। डाल से संयोग है तब तक अधःपतन नहीं होता। तो यह कहलाया प्रतिबन्ध्यप्रतिबंधकभाव। और जब डण्ठल से फल का संयोग टूट जाता है तब वह फल नीचे गिर जाता है। तो वह गुरुपना नीचे गिरा देने का कारण है। संयोग के अभाव में गुरुत्व पतन का कारण होता है, ऐसा वैशेषिक आदिक ने भी अपने सूत्र में कहा है। किंतु प्रकृत में देखिये—अस्तित्व और नास्तित्व इन दो धर्मों में कहाँ प्रतिबन्ध्य और प्रतिबन्धक भाव है ? इसमें यह विरोध तब कहलाता जब अस्तित्व तो नास्तित्व के प्रयोजन का प्रतिबन्ध करता हो, और नास्तित्त्व आस्तित्त्व के प्रयोजन का प्रतिबन्ध करता हो, सो ऐसा प्रतिबन्ध रंच भी नहीं है। क्योंकि अस्तित्व के काल में ही पर स्वरूप से नास्तित्व बना हुआ है। प्रतिबन्ध कहां हो सका ? प्रतिबन्ध का अर्थ यह है कि अस्तित्व नास्तित्व के काम को रोक दे और नास्तित्व अस्तित्व के काम को रोक दे, पर यहां किसी का प्रयोजन रुका हुआ नहीं है। वस्तु निरन्तर स्वरूप से सत् है, पररूप से असत् है। तो इस तरह इन धर्मों में प्रतिबन्ध्य प्रतिबन्धक भावरूप विरोध नहीं है। और यों भले प्रकार से सिद्ध होता है कि पदार्थ अनेकान्तात्मक है। यह जीव भी अनेकात्मक है।

जीवतत्व के विज्ञान से आत्मकल्याण में लगन की प्रेरणा—चतुर्थ अध्याय के समापन के समय यह जिज्ञासा की गई थी कि जीव वास्तव में है भी या नहीं, तो जीव पदार्थ को भावात्मक और एकानेकात्मक सिद्ध करने के लिए यह सप्तभंगी का प्रकरण चला। यहाँ जीव पदार्थ अस्तित्व को जान कर और साथ ही जब यह है तो निरन्तर परिणमन करता रहता है ऐसा जानकर अपनी आत्मभावना करें कि मेरा परिणमन दुःख रूप न हो, किंतु निरन्तर शांतिरूप हो। ऐसी भावना रखना चाहिये। पवित्र परिणमन यह है कि मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा मात्र ज्ञान की ही वृत्ति को करता रहूँ। उसमें विकार का प्रसंग न आने दें। आत्मा में विकार क्या है, सो उपादानतया देखो तो वह विकार यह है कि ज्ञान का अनेक विध अज्ञान रूप से परिणमन चल रहा है। और यह हुआ क्यों ? कर्म के अनुभाग का सम्बन्ध पाकर। आत्मा में स्वयं कभी विकार नहीं होता। यदि जीव में स्वय विकार होने लगे तो वह स्वभाव हो जायेगा, पर स्वभाव तो ज्ञान का है, विकार का नहीं। सो जब तक कर्म उपाधि के सम्बन्धवश यह जीव अपने ज्ञान को अज्ञानरूप परिणमाता है तब तक संसार है, जन्म मरण है। चतुर्गतिभ्रमण है और जब यह जीव अपने ज्ञानस्वरूप को अपने में ही समझकर समग्र परके उपयोग से निवृत्त होता है और आत्मा में एकाग्र होता है तब इसके ज्ञान की प्रगति होती है। तो गत द्वितीय, तृतीय चतुर्थ अध्यायों में जीव की सर्व तरह की दशायें बताई गई हैं। उन सब विभाव दशाओं से हटने के लिए अपने ज्ञानस्वभाव का आलम्बन लेना चाहिए।

Version 1